प्रकाशक.—
फूसराज बच्छावत,
बीकानेर।

प्रथमावृत्ति १०००

साहित्य प्रचारार्थ
मूल्य १)

वसंतपंचमी,
वि.सं २००४

मुद्रकः—
फतेहसिंह जैन,
श्री गुरुकुल मुद्रणालय,
ब्यावर।

# एक दृष्टि

भारतीय साहित्य में एक से एक उत्तम चरित मौजूद हैं, जो प्राचीन काल में भारत की जनता को जीवन-प्रेरणा देते रहे हैं और जिनके सहारे आज भी भारत की संस्कृति स्थिर है। ऐसे ही प्रशस्त और उत्तम चरित्रों में सतीशिरोमणि अजना का भी चरित्र गिना जा सकता है। अजना सती का चरित महिला-समाज के लिए महान् उद्‌बोधन है, जीवन को उन्नत बनाने वाला प्रशस्त पाठ है और प्रमाद या सम्मोह से पथच्युत न होने देने के लिए जाज्वल्यमान प्रकाशस्तभ है।

एक समय था, जब भारत देश में दाम्पत्य-जीवन की मधुरता का पार नहीं था। पति और पत्नी में स्वार्पण की भावना थी। एक दूसरे में अपने अस्तित्व को विलीन कर देने की साध थी। पत्नी अर्धांगिनी थी और पति अर्धांग था। दोनों एक दूसरे के विना अपूर्ण थे। दोनों मिलकर एक दम्पती बनते थे और उसी में अपने गृहस्थ-जीवन की सार्थकता समझते थे। जहाँ इतनी गहरी आत्मीयता हो वहाँ अधिकारो की माँग का प्रश्न ही कैसे उपस्थित हो सकता था? अतएव यहाँ कोरा समर्पण था—दान था, आदान की अभिलाषा तक नहीं थी।

मगर आज वह युग नहीं रहा। युरोपवासियों के ससर्ग ने हमारे गृहस्थजीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है। उस प्रभाव से हमारे देश के गार्हस्थ्य जीवन की नींव हिल रही है। आज वह पवित्रता, वह आत्मीयता, वह स्वात्मसमर्पण की सद्‌भावना समाप्त हो रही है। दाम्पत्य जीवन के मधुर रस का स्रोत सूखा जा रहा जान पड़ता है।

हमें यह स्मरण रखना होगा कि दाम्पत्यजीवन और पारिवारिक

जीवन ही किसी देश की संस्कृति के प्रधान आधार होते हैं। अगर पारिवारिक जीवन विषैला बन गया तो समझ लीजिए कि संस्कृति की आत्मा को घुन लग गया। अतएव यदि हम अपनी सस्कृति को कायम रखना चाहते हैं तो हमें दाम्पत्यजीवन और पारिवारिक जीवन को उसी साचे मे ढालना होगा जिसकी आज्ञा भारतीय मस्कृति देती है।

राजनीतिक पराधीनता के फलस्वरूप हमारे देश मे सास्कृतिक पराधीनता भी आई है। हमने राजनीतिक पराधीनता के दुष्फल पहिचाने और उसके विरुद्ध ताकत लगाई। नतीजा यह हुआ कि देश स्वाधीन हो गया मगर यह स्वाधीनता अभी तक राजनीतिक स्वाधीनता ही है। इस स्वाधीनता को पाकर भी हमे सांस्कृतिक स्वाधीनता पाना अभी शेप है। असली स्वाधीनता यही है। इसे प्राप्त करना कठिन अवश्य है क्योंकि सास्कृतिक गुलामी ने हमारे मस्तिष्क और हृदय पर अधिकार कर रक्खा है और बहुत से भारतीय उस गुलामी को वरदान मानते हैं। इस प्रकार पराधीनता मिट जाने पर भी पराधीनता के दुष्फलो से हम अभी तक मुक्त नहीं हो पाये है। फिर भी उनसे हमें मुक्त होना ही होगा। अन्यथा राजनीतिक स्वाधीनता का कोई मूल्य नहीं रह जायगा।

सांस्कृतिक स्वाधीनता को पाने के लिए, गार्हस्थ्यजीवन को मधुर और आनन्दमय बनाने के लिए और जीवन की पवित्रता प्राप्त करने के लिए भारतवर्ष के आदर्श चरित बहुत कुछ उपयोगी हो सकते हैं। इसी विचार से सती अजना का चरित पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जा रहा है।

पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज ने अपने प्रतिभाकौशल से इसे आधुनिक रूप देने का सुन्दर प्रयत्न किया है। प्रत्येक भारतीय रमणी के लिए यह पठनीय और आचरणीय है। आशा है इससे लाभ उठा कर पाठिकाएँ और पाठक परिश्रम को सार्थक करेंगे।

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

# प्रकाशकीय निवेदन

पाठक महानुभाव !

लीजिए, पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के ओजस्वी, प्रभाव-शाली और जीवनप्रेरक व्याख्यानसाहित्य मे से यह सोलहवीं किरण आपके करकमलो मे उपस्थित है। इसमें सती अजना का चरित दिया गया है। यह चरित आज समाज के लिए बड़ा ही उपयोगी है। हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि यह पावन चरित प्रत्येक महिला के हाथ मे पहुँचना चाहिए।

## कठिनाइयाँ

कैसी-कैसी विरोधी परिस्थितियों में हम श्री जवाहर-साहित्य के प्रकाशन-कार्य को अग्रसर कर रहे हैं और शीघ्रता के साथ किरणो पर किरणें पाठको की सेवा मे उपस्थित करते जा रहे है, यह कहने की जरूरत नहीं। स्वर्गीय पूज्य श्री के व्याख्यानों मे उत्तम-उत्तम विचार भरे है और वे विचार न केवल जैन समाज के लिए, न सिर्फ भारतवर्ष के लिए, अपितु विश्व के लिए समान रूप से उपयोगी है। ऐसे उत्तम और उपयोगी विचारों का थोड़ा सा भाग ही अभी तक प्रकाश मे आया है और अधिकांश भाग व्याख्यानो की फाइलों में ही बन्द है। अगर इसी प्रकार शीघ्रतापूर्वक कार्य होता रहे तो भी कई वर्ष सबके प्रकाशन में

लग जाएँगे। कम से कम पचास किरणों के बिना तो काम चल ही नहीं सकता। हमने अपने मन में पचास किरणों के प्रकाशन की योजना निश्चित कर ली थी। आगे की बात आगे सोचते। मगर जैसा कि कहा जा चुका है, विरोधी परिस्थितियों के कारण अब यह सम्भव दिखाई नहीं देता।

स्व० पूज्य श्री के व्याख्यान स्थानकवासी सम्प्रदाय की एक अनमोल निधि है। उन पर हमें अभिमान है। इस निधि को हम सर्वसाधारण के सामने रख देना अपने सम्प्रदाय के लिये गौरव की चीज समझते हैं। सिर्फ इसी कारण साहित्यप्रकाशन का कार्य हमने हाथ में लिया है। लेकिन पूज्य श्री के अनन्य भक्त कहलाने वाले हमारे ही कुछ बन्धु शायद हमारे इस प्रयत्न को पसन्द नहीं करते।

## फिर कीमत के विषय में

एक भाई का कहना है कि जब साहित्य-प्रचार के निमित्त फण्ड इकट्ठा किया गया है तो जवाहरसाहित्य लागत से आधे मूल्य में क्यों नहीं दिया जाता? शायद औरों का भी ऐसा खयाल हो तो स्पष्टीकरण कर देना आवश्यक है। मण्डल के ब्यावर-अधिवेशन में श्री जवाहर-साहित्य के प्रकाशन और प्रचार के लिए फण्ड इकट्ठा किया गया है। उस फण्ड के विषय में यह भी तय हुआ है कि किसी दूसरे काम में उसे खर्च न किया जाय। इधर साहित्यप्रकाशन का कार्य तो बगड़ी-अधिवेशन में जवाहर साहित्य समिति भीनासर को सौंपा गया, मगर फण्ड सारा मण्डल में ही सुरक्षित रक्खा है। उस फण्ड में से एक

पाई का भी उपयोग न करते हुए भी हमने हजारों पृष्ठों का साहित्य लागत मूल्य में प्रकाशित किया है और करते जा रहे हैं। लागत से वसूल होने वाले धन को भी साहित्यप्रचार के ही कार्य मे व्यय करने के लिए विभिन्न प्रकाशकों से वचन लेते जाते है। इस प्रकार जहाँ श्री जवाहर साहित्य लागत कीमत मे पाठकों को मिल रहा है वहीं हजारो की रकम साहित्यप्रचार के लिए सुरक्षित हो गई है, जिससे भविष्य में उत्तम साहित्य का सरलतापूर्वक प्रकाशन किया जा सकेगा। दूसरी साहित्यिक पुस्तकों की अपेक्षा हमारी किरणो का मूल्य बहुत कम है। साहित्य का प्रचार बराबर बढ़ता जा रहा है और सर्वसाधारण ग्राहको की ओर से मूल्य सम्बन्धी खास शिकायत भी नहीं की जा रही है।

जब तक साहित्य के लिए इकट्ठा किया हुआ रुपया मण्डल के पास सुरक्षित है और उसका कुछ भी भाग समिति की ओर से होने वाले प्रकाशन के निमित्त नहीं मिलता तब तक लागत मूल्य पर ही हम साहित्य प्रकाशित करने के लिए मजबूर हैं।

## आभार

यह सोलहवीं किरण बीकानेर निवासी श्रीमान् सेठ फूसराजजी सा बच्छावत की ओर से प्रकाशित हो रही है। इस पुस्तक से होने वाली आय को आप ज्ञानप्रचार में ही व्यय करेंगे। बच्छावतजी साहित्यप्रेमी सज्जन हैं। सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सदैव प्रमुख भाग लेते रहते हैं। आपके प्रयत्न से कलकत्ता में स्थानकवासी सम्प्रदाय का [illegible] विशाल मकान हो गया है। इसके लिए आपने बड़ी लगन से

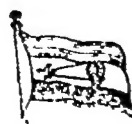
किया है। एक व्यक्ति जब तक अगुआ नहीं बनता तब तक कोई बड़ा काम नहीं होता। इस दृष्टि से इसका बहुत कुछ श्रेय आपको ही है।

बच्छावतजी सुधरे हुए विचारों के सज्जन हैं। रूढ़िवादी कतई नहीं। आपने अपने बाहुबल से अच्छी सम्पत्ति ही नहीं उपार्जित की है बल्कि मान–प्रतिष्ठा भी उपार्जित की है। आपके स्वभाव में और वाणी में मिश्री की मिठास है। हृदय अत्यन्त स्वच्छ और कोमल है। आपसे मिलकर प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न होता है। आप बड़े ही मिलनसार प्रेमी हैं। श्री बच्छावतजी हमारे इस आयोजन में मददगार हुए हैं और अन्य समाज एवं धर्म के कार्यों में लगे रहते हैं। इसके लिए हम आपके आभारी हैं।

श्री जैन ज्ञानोदय सोसाइटी राजकोट और श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम के प्रति भी हम अपना आभार प्रदर्शित करते हैं, जिनके सहयोग से हम इस चरित को प्रकाशित कर सके हैं।

भीनासर
(बीकानेर)
बसंतपंचमी,
२००४

निवेदक —
चम्पालाल बाँठिया,
मन्त्री,
श्री जवाहर साहित्य-समिति।



# अंजना

## १

## जन्म

प्राचीन काल में इसी भव्य भारतवर्ष में महेन्द्रपुर नामक एक सुन्दर नगर था। जिस समय की यह कथा है, उस समय महेन्द्रपुर का राजा महेन्द्र था। राजा महेन्द्र की पत्नी का नाम रानी मनोवेगा था। राजा महेन्द्र के यहाँ कई पुत्रों का जन्म होने के पश्चात् एक कन्या का जन्म हुआ। आज-कल की भाँति उस समय कन्या का जन्म विपत्ति का अवतार नहीं समझा जाता था। अतएव कन्यारत्न का जन्म होने पर माता-पिता ने बड़े चाव से जन्मोत्सव मनाया और कन्या का नाम रक्खा-अंजना।

अंजना विकार-युक्त दृष्टि वालों को भी सुधारने वाली थी। विकृत दृष्टि वालों की आँखों में सदाचार रूपी अंजन आँजने वाली यह अंजना थी। वह परमात्मा के स्वरूप को

पहचानने वाली थी और साथ ही साथ सुन्दरी भी थी।

संसार में सोने में सुगंध नहीं देखा जाता। इसी प्रकार संसार में गुण और सौन्दर्य का एक ही स्थान पर मिलना भी कठिन माना जाता है। जहाँ रूप है—सौन्दर्य है वहाँ प्रायः गुणों की न्यूनता दिखाई देती है और जहाँ गुण हैं वहाँ सौन्दर्य प्रायः नहीं होता। परन्तु अजना में सौन्दर्य के साथ सद्गुणों का भी सुन्दर समन्वय हुआ था। इस प्रकार उसने सोने में सुगंध की कहावत चरितार्थ की थी।

राजा महेन्द्र अजना को देखते तो उनकी प्रसन्नता का पार न रहता। वह मन ही मन सोचते-यह कन्या अवश्य ही हमारे कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाएगी। अजना को सुयोग्य बनाने के लिए राजा महेन्द्र ने उसकी शिक्षा आदि की उचित व्यवस्था की।

क्या आजकल के माता-पिता अपनी कन्या को कन्योचित शिक्षा देने की ओर ध्यान देते हैं? आज के लोग कन्या को लाड़ भले ही लड़ा लें परन्तु कन्योचित शिक्षा देने की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं।

अंजना पढ़-लिख कर होशियार बनी। कुमारी-अवस्था में अजना ने विद्या का अभ्यास किया। अब वह विवाह के ग्य हो गई।





# विवाह की चिन्ता

कन्या जब विवाह के योग्य हो जाती है तो उसके विवाह की चिन्ता माता-पिता को स्वभावतः होती ही है। अंजना को विवाह के योग्य जानकर राजा महेन्द्र विचार करने लगे—'यद्यपि अंजना को सुयोग्य ही वर मिलेगा, परन्तु इस विषय में मैं अपनी प्रजा की सम्मति ले लूं तो क्या हर्ज है? इससे प्रजा को यह भी विदित हो जायगा कि किस उम्र में विवाह करना योग्य है? और कैसे वर के साथ संबंध करना चाहिए? मैं बालविवाह का विरोधी हूँ। अतएव प्रजाजनों के सामने अपनी ही कन्या का आदर्श उदाहरण उपस्थित करके मुझे स्पष्ट कर देना चाहिए कि मैं बालविवाह का विरोध करता हूँ। कन्या को प्रजाजनों के सामने बुलाकर मुझे यह भी प्रकट कर देना चाहिए कि अब कन्या वास्तव में ही विवाह के योग्य हो गई है। किस प्रकार के वर के साथ कन्या का विवाह करना चाहिए, इस संबंध में भी प्रजाजनों की राय लेना उचित होगा।'

राजा महेन्द्र ने इस प्रकार विचार करके रानी से कहा—'अंजना को तैयार करके कल राजसभा में भेज देना।'

है। राजा समझता है कि प्रजा का शोषण करने के लिए ही विधाता ने हमारा निर्माण किया है! ऐसी स्थिति में किसी कार्य के लिए प्रजा की सम्मति लेने की उन्हें आवश्यकता ही महसूस नहीं होती। उन्हें यह नहीं सूझता कि आज तो हम प्रजा का शोषण कर रहे हैं परन्तु जब शोषण करने के लिए कुछ शेष नहीं बचेगा तब क्या होगा?

इस प्रकार अंजना के चरित से जहाँ राजा और प्रजा के संबंध पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है वहाँ अहंकार को जीतने की भी शिक्षा मिलती है।

आज लोग किसी अच्छे काम के संबंध में भी दूसरों की सलाह लेने में अपना अपमान मानते हैं, परन्तु पुराने जमाने के लोग दूसरों की सलाह-सूचना लेकर कार्य आरंभ करने में अपना हित समझते थे।

राजा महेन्द्र अपनी कन्या अंजना का विवाह करने के संबन्ध में अगर दूसरों की सम्मति न लेते तो उनका कोई काम रुक नहीं सकता था। परन्तु राजा ने विचार किया कि मैं जिस मार्ग पर चलूँगा प्रजा भी उसी मार्ग पर चलेगी। अतएव राजा की हैसियत से प्रजा के सामने ऊँचा आदर्श उपस्थित करना मेरा कर्त्तव्य है। सर्वप्रथम मैं यही आदर्श क्यों न उपस्थित करूँ कि कन्या का विवाह कब करना चाहिए? और प्रजा की दृष्टि में कन्या विवाह के योग्य हुई है या नहीं, यह बात भी प्रजा से जान लेना चाहिए।

आज भी बालविवाह की प्रथा बहुत से प्रान्तों में प्रचलित है। गुजरात जैसे कुछ प्रान्तों मे यद्यपि यह प्रथा कम हो गई है फिर भी मारवाड़ आदि प्रान्तों में अब भी इसका बहुत जोर है। शायद माता-पिता यह सोचते हैं कि पुत्र-पुत्री हमारे ही हैं और इस कारण हम जब चाहें तभी उनका विवाह कर देने का हमें अधिकार है ! इस संबन्ध में किसी को कुछ कहने का हक़ ही क्या है ? और हमें क्या आवश्यकता है कि हम दूसरों की सम्मति मांगते फिरें ?

इस प्रकार अपनी संतान की उन्नति के विषय में विचार-विनिमय करने की भावना बदल गई है और अभिमान ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया है। माता-पिता धनांध, सत्तांध और प्रेमांध होकर अपनी संतति का बालविवाह करके अभिमान करते हैं। मगर इस बालविवाह के कारण संतान का भावी जीवन कितना दुःखमय बन जाता है, यह कहना कठिन है !

राजा महेन्द्र की आज्ञा के अनुसार अजना राजसभा में गई। राजसभा में राजा, मंत्रीगण और प्रजाजन उपस्थित थे। राजा महेन्द्र के अपनी कन्या को राजसभा में बुलाने के कार्य को आप कदाचित् बुरा समझेंगे, मगर वास्तव में राजा का यह कार्य उचित ही था, अनुचित नहीं। कन्या भले ही अपनी । पर उसके विवाह के विषय में दूसरों की सलाह लेने में कोई बुराई नहीं है। राजा का कार्य अगर अनुचित होता तो क्या

उस राजसभा में कोई चतुर आदमी मौजूद न था जो स्पष्ट कह देता—'महाराज, आपकी कन्या के विवाह के विषय में हमारी सलाह लेने की क्या आवश्यकता है? यह तो आपके घर का काम है। आप अपने घर में ही इसका विचार कर लीजिए।' किन्तु दूसरों की सलाह लेने की पद्धति अच्छी थी और इस कारण किसी ने भी इसका विरोध नहीं किया। दूसरी बात यह है कि आप स्वयं इस पद्धति को बुरा नहीं कह सकते। जो लोग इस पद्धति को अच्छी समझते हैं, वे भी क्या इसे अपनाते हैं? अच्छाई को अपनी ही समझकर उसे अपनाने की भावना होनी चाहिए। इस भावना का परित्याग कर देना चाहिए कि जो मेरा है वही अच्छा है। अच्छाई कहीं भी क्यों न हो, उसे अपना लेने में ही मनुष्य का कल्याण है। शास्त्र का कथन है कि आत्मा अपना कल्याण आप कर सकता है।

कहा जा सकता है कि हम किस प्रकार यह निर्णय करें कि अमुक बात अच्छी है या बुरी है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जिस वस्तु को तुम अच्छी समझ रहे हो, उस सत्य वस्तु को निष्कपट भाव से अपनाओ। इसी में तुम्हारा कल्याण है। हाँ, बात सत्य होने पर भी यदि उसके विषय में, तुम्हारे हृदय में कपट है तो वह सत्य बात भी तुम्हारे लिए असत्य ही है। कहने का आशय यह है कि जिस वस्तु के प्रति तुम्हारा हृदय सरल है, वह तुम्हारे लिए सत्य रूप

ही है।

जिस वात में सचाई होती है उसके प्रकट करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता। भय तो खोटी वात कहने या प्रकट करने में ही होता है। अगर तुम्हारा सोना सच्चा है तो किसी के भी सामने उसे प्रकट करने में तुम्हें संकोच नहीं होगा। तुम सभी जगह उसे दिखलाने को तैयार रहोगे। हाँ सोना अगर नकली हुआ तो उसे दिखलाने में तुम्हें भय तथा संकोच होगा।

राजा महेन्द्र ने विचार किया—'जव मेरी कन्या विवाह के योग्य हो गई है तो दूसरों को वतलाने में हानि ही क्या है? मुझे डर किस वात का है? इसके अतिरिक्त मेरे लिए यह दुराग्रह रखना भी ठीक नहीं कि कन्या मेरी है तो उसके विवाह के विषय में मै स्वयं अकेला ही विचार करूँ! मुझे तो सभाजनों की सम्मति लेना ही उचित जान पड़ता है।

इस प्रकार विचार करके राजा ने सभाजनों से प्रश्न किया-इस कन्या का विवाह किसके साथ करना उचित है? राजा ने अपने मन में दृढ़ निर्णय कर लिया था कि अगर सभाजनों की दृष्टि में यह कन्या किसी गरीव को देने योग्य ॲचे और कन्या भी यह वात स्वीकार करे तो ऐसा ही करने मुझे तनिक भी उज्र नहीं होगा।

राजा महेन्द्र का कथन सुनकर सभाजन प्रसन्न हुए। वह मन ही मन विचारने लगे—जव राजा अपनी कन्या के

विषय में हमारी सलाह लेते हैं तो हमें भी अपने कर्त्तव्य का विचार करना चाहिये। जब राजा भी हमारे वचन की कद्र करते हैं तो हमें भी राजा की सलाह लेनी और माननी चाहिए।

'यथा राजा तथा प्रजा' यह एक तथ्य है। परन्तु इस कहावत के साथ दूसरी कहावत यह भी है कि 'यथा प्रजा तथा राजा' अर्थात् जैसी प्रजा होती है वैसा ही राजा भी होता है। इससे राजा और प्रजा के संबंध की घनिष्ठता का पता चलता है।

राजा महेन्द्र ने उपस्थित सभाजनों से कन्या के योग्य वर की पसंदगी करने के विषय में प्रश्न किया। सभाजनों ने प्रधान को संबोधित करके कहा—'आप हम सब में अधिक बुद्धिमान् और अनुभवी हैं। अतः आप ही कन्या के योग्य वर बतलाइए।'

प्रधान बोले—राजा रावण बड़ा राजा है और बलवान् भी है। अगर राजा रावण के साथ इस कन्या का विवाह हो सके तो अपना बल [illegible] कई गुना बढ़ जायगा। रावण अपना दामाद बनेगा तो उसका राज्यबल भी अपने राज्य-बल की वृद्धि करेगा। अतएव मेरी सम्मति के अनुसार कन्या का विवाह राजा रावण के साथ करना उचित होगा।

प्रधान के इस कथन के उत्तर में दूसरे सभासद ने कहा—'आप अपना या राज्य का ही भला सोचते हैं [illegible]

भी ? राजा रावण कितना घमंडी और कितना उन्मत्त है, यह बात आप सभी जानते हैं। वह अहंकार एवं अभिमान के नशे में चूर रहता है और दूसरों को टके सेर तक नहीं पूछता। ऐसे अभिमानी पुरुष में सद्‌गुणों का वास कैसे हो सकता है ? ऐसे घमंडी को कन्या देना तो विष की वेल बढ़ाने के समान है। विष-वेल में सदा विष-फल ही लगते हैं। इसी भांति अभिमान रूपी वेल का फल भी कटुक ही होता है। राजा रावण अहंकारी और अभिमानी होने के साथ उम्र में भी बड़ा है। ऐसी स्थिति में उसके साथ राज-कुमारी का संबंध जोड़ना योग्य नहीं है। इसके अतिरिक्त रावण पहले ही विवाहित है और उसकी पत्नी मौजूद भी है। एक पत्नी की मौजूदगी में अपनी कन्या देना अनुचित है।

जिसके एक पत्नी मौजूद हो उसे अपनी कन्या नहीं देना चाहिए, यह कथन क्या आप युक्तिसंगत समझते हैं ? आज तो यह बात लोगों को कटुक जान पड़ती है। मगर वह समय दूर नहीं है जब आज बहुविवाह की जो प्रथा प्रचलित है यह समूल नष्ट हो जायगी। जो प्रथा कानून से मजबूर होकर छोड़नी पड़े, उसका स्वेच्छा से त्याग देना ही योग्य है।

सभाजनों में से दूसरे सदस्य ने पूर्वोक्त सदस्य का समर्थन करते हुए कहा—वास्तव में राजा रावण के साथ राज-... का विवाह करना उचित नहीं है। हां, रावण की अपेक्षा ...सके पुत्र मेघनाद के साथ संबंध करना ठीक होगा।

तीसरे सदस्य बोले–जब बाप ही योग्य नहीं है तो बेटा कैसे योग्य हो सकता है? जैसा बाप वैसा बेटा, यह लोकोक्ति तो प्रसिद्ध ही है। जब बाप अहंकारी है तो उसका बेटा भी अहंकारी हो, यह स्वाभाविक है। अतएव मेघनाद के साथ विवाह संबंध करना भी मुझे ठीक नहीं जँचता। विद्युत्पर्व के साथ संबंध करना मेरी सम्मति मे ठीक होगा। विद्युत्पर्व त्यागशील और सदाचारी है।

चौथे सदस्य ने कहा—विद्युत्पर्व अल्पजीवी है। उसके विषय में यह भविष्यवाणी है कि वह अठारह वर्ष की उम्र में संयम धारण करेगा और छब्बीस वर्ष की उम्र में मुक्तिलाभ कर लेगा। ऐसी हालत मे उसके साथ विवाह–संबंध जोड़ना भी कैसे उचित कहा जा सकता है?

सभासद आपस में इस प्रकार विचार-विनिमय कर रहे थे। राजा ने सभासदों से कहा—'इस प्रकार बातें करते रहने से प्रस्तुत प्रश्न का निर्णय कैसे होगा? तब सभासदों ने कहा—हम लोग परस्पर विचार-विनिमय करके आपको निश्चित उत्तर देंगे।

राजकुमारी का विवाह-संबंध किसके साथ करना चाहिए इस विषय को लेकर प्रजाजन में विचारविनिमय करने लगे। एक ने कहा—'राजा प्रह्लाद का पुत्र पवनजी राजकुमारी के लिए सभी तरह से उपयुक्त वर है। वह अभी तक अविवाहित है और सदाचारी है। वह सब प्रकार से निष्कलंक है

एव पवनजी के साथ ही राजकुमारी का संबंध जोड़ना उचित होगा। अन्य प्रजाजनों ने भी इस कथन का समर्थन किया। तब सर्वसम्मत निर्णय करके प्रजाजन राजा के पास पहुँचे। राजा को भी उनका निर्णय पसंद आया। प्रजाजनों ने राजा से कहा—लोगों ने तो यह निर्णय किया है मगर राजकुमारी की इच्छा का भी पता लगा लेना चाहिए। यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हें यह संबंध पसंद है या नहीं?

इस प्रकार विचार करके राजा ने अजना से पूछा—'हम लोगों ने पवन के साथ तुम्हारा विवाह करना निश्चित किया है। इस विषय में तुम्हारी क्या इच्छा है?'

पिता के प्रश्न से अजना लजा गई और सभा में से उठकर अन्तःपुर की ओर चली गई।

कन्या के विवाह के विषय में कन्या से ही इस प्रकार प्रश्न करना क्या उचित है? आज तो अपनी इच्छा के अनुसार ही संरक्षक अपनी संतान का विवाह कर देते हैं। अतएव विवाह के विषय में कन्या की इच्छा जानने का विचार ही उत्पन्न नहीं होता। कन्या वयस्क और समझदार हो तो उससे विवाह संबन्धी प्रश्न पूछा जा सकता है, पर जहाँ बचपन में ही कन्या का विवाह कर दिया जाता हो वहाँ इस वि[illegible] में पूछताछ करने का सवाल ही खड़ा नहीं होता। जो [illegible] इतनी अनजान होती है कि उसे यह भी मालूम नहीं होता कि विवाह क्या वस्तु है, वह अपने विवाह के विषय में

क्या सम्मति दे सकती है? प्राचीन काल में छुटपन में विवाह नहीं किया जाता था। उस समय नरिसचया, सरिसतया, इस शास्त्रपाठ के अनुसार कन्या और वर में सब प्रकार की अनुरूपता देखी जाती थी। तभी वर और कन्या-दोनों की स्वीकृति से विवाह किया जाता था।

पिता का प्रश्न सुनकर अंजना लज्जित हो गई और राजसभा में से उठकर चली गई। लज्जा के कारण वह न 'हाँ' कह सकी और न 'नहीं' कह सकी। प्रजाजनों ने राजा से कहा-राजकुमारी ने लज्जा के वश विवाह के विषय में कुछ कहा नहीं है, परन्तु विवाह-सम्बन्ध जोड़ने के विषय में उन्होंने निषेध भी नहीं किया है। इससे यह नतीजा निकलता है कि पवनजी के साथ विवाह करना उन्हें स्वीकार है।

अपने विवाह के विषय में अंजना के हाँ या ना न कहने के कारण राजा महेन्द्र ने भी यही समझा कि कन्या को पवन के साथ विवाह करना स्वीकार है। अतएव उन्होंने पवन के साथ अंजना की सगाई और साथ ही विवाह भी कर देने का निर्णय कर लिया।

सगाई के अवसर पर राजा ने किसी भी प्रकार का बाह्य आडम्बर नहीं किया। उन्होंने राजा प्रह्लाद के पास एक संदेशपत्र भेजा कि मैं अपनी कन्या अंजना का विवाह आपके चिरंजीव पवनकुमार के साथ करना चाहता हूँ।

अतएव आप अमुक दिन पवनकुमार को लेकर मानसरोवर पर पधारें। हम निश्चित समय पर वहीं मिलेंगे।'

राजा महेन्द्र का आमंत्रणपत्र राजा प्रह्लाद को मिला। यह शुभ समाचार जानकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुए। अंजना बहुत अच्छी कन्या है और वह कुल का गौरव बढ़ाएगी, इस प्रकार कहकर सभी लोग अंजना की प्रशंसा करने लगे।





# रंग में भंग

——::::():::——

पवनकुमार को भी मालूम हुआ कि अंजना के साथ मेरे विवाह की बातचीत हो रही है। उसने लोगों से अंजना की प्रशंसा सुनी। पवनकुमार ने किस उद्देश्य से अंजना को देखने का निश्चय किया, यह बात कथाग्रन्थों में दूसरे रूप में वर्णित की गई है; परन्तु पवनकुमार जैसे महापुरुष का स्त्री के प्रति इस प्रकार आकर्षित होना संगत नहीं जान पड़ता। अतएव यही कहना उचित प्रतीत होता है कि जब पवनकुमार ने अंजना की बहुत प्रशंसा सुनी तो उसने सोचा-जिसकी इतनी अधिक प्रशंसा सुनी जा रही है, देखना चाहिए वह वास्तव में वैसी है! जिसके साथ हमारा विवाह किया जा रहा है उसके साथ जीवनव्यवहार भलीभांति निभ सकेगा या नहीं, इस विचार से प्रेरित होकर प्राचीन काल में वर वधू को और वधू वर को देख लिया करती थी। इसी विचार को

सामने रखकर पवनकुमार ने भी अजना को देख लेने का विचार किया। उसने अपना यह विचार अपने मित्र प्रहस्त के सन्मुख प्रकट किया। पवनकुमार का यह विचार जानकर प्रहस्त ने कहा-अगर आप यही चाहते है तो हानि क्या है! हम लोग चलकर अजना को देख आएँगे।

पवनकुमार विद्याधर थे। विद्याधरों के पास विमान होते हैं। आज तो भौतिक विज्ञान से विमान चलते हैं, इस कारण विमान की बात पर लोगों को विश्वास हो जाता है। मगर पहले जब विमान की बात कही जाती थी तो सुनने वालों को आश्चर्य होता था। लोगों को भौतिक विज्ञान पर जितना विश्वास है उतना आध्यात्मिकता पर नहीं है, यह खेद की बात है।

एक दिन पवनकुमार अपने मित्र प्रहस्त के साथ विमान में बैठकर महेन्द्रपुर आये। अब उनके सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि अजना को किस प्रकार देखा जाय? प्रकट रूप में अंजना के पास पहुँचना उन्हें अनुचित प्रतीत हुआ। प्रहस्त ने पवनकुमार से कहा—धीरज रक्खो। तुम्हारा मन स्वच्छ होगा तो तुम्हारी मनोकामना भी पूरी हो जाएगी।

अजना के विवाह की बात महेन्द्रपुर में सब जगह फैल चुकी थी। अजना की सखियाँ एक बगीचे में बैठी इसी विषय बातें कर रही थीं। प्रहस्त ने पवनकुमार से, उन स्त्रियों ओर इशारा करके कहा—पवनकुमार! देखो, उन कन्याओं

में जो तारायों में चन्द्रमा की भांति दिखाई देती है, वही अंजनाकुमारी जान पड़ती है।' दोनों चुपके से उनकी बातें सुनने लगे।'

उस समय अंजना की एक सखी, जिसका नाम वसन्त-माला था, अंजना से कह रही थी—सखी ! बड़े ही आनन्द की बात है कि तुम्हारा विवाह पवनकुमार के साथ हो रहा है। पवनकुमार युवक है, सुन्दर है और तुम्हारे ही समान धर्माभिमानी हैं। ऐसे सुन्दर पति का मिलना सौभाग्य की बात है।

वसन्तमाला ने यह कहकर पवनकुमार की प्रशंसा की। पवनकुमार की प्रशंसा सुनकर अंजना ने मुंह से कुछ कहा तो नहीं पर वह हंसने लगी। अंजना को प्रसन्न देखकर उसकी सखियां समझ गईं कि हमारी सखी पवनकुमार के साथ विवाह करने में अत्यन्त प्रसन्न है।

वसन्तमाला की बात पूरी होने पर दूसरी सखी कहने लगी-सखी अंजना ! अब तुम्हें पतिव्रत धर्म का पालन करना पड़ेगा। पतिव्रत धर्म सगाई होते ही प्रारंभ हो जाता है। तुम्हारी सगाई हो चुकी है, अतएव अब तुम्हारे लिए यह पतिव्रत धर्म उत्पन्न हो चुका है।

पतिव्रत धर्म का महत्त्व बहुत अधिक है। जो स्त्रियां पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकतीं वे पतिव्रत धर्म का पालन करके भी आत्मशक्ति की साधना कर सकती हैं। सीता पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करती थी परन्तु पतिव्रत धर्म

का पालन करती थी।

जैसे स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म है, उसी प्रकार पुरुषों के लिए भी पत्नीव्रत है। जिसमें पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने की शक्ति नहीं है उसे पतिव्रत या पत्नीव्रत का पालन अवश्य करना चाहिए।

अंजना और उसकी सखियाँ बगीचे में बैठकर निःसंकोच भाव से आनन्दपूर्वक वार्तालाप कर रही थीं। वार्तालाप में प्रायः दो पक्ष पैदा हो जाते हैं। तदनुसार अंजना के विवाह-संबंध में भी उसकी सखियों मे दो पक्ष खड़े हो गए। दूसरे पक्ष में सिश्रकेशी नाम की सखी थी। उसने कहा—हमारी सखी का विवाह विद्युत्पर्व के साथ न होकर पवनकुमार के साथ हो रहा है, यह कोई सौभाग्य की बात नहीं है। विद्युत्पर्व कैसा महापुरुष है! पवनकुमार उसका मुकाबिला नहीं कर सकते। समुद्र और जल के बूंद मे जितना अन्तर है उतना ही अन्तर विद्युत्पर्व और पवनकुमार में है।

मिश्रकेशी के इस कथन के उत्तर में तीसरी सखी ने कहा—विद्युत्पर्व कैसा ही क्यों न हो, वह अल्पायुष है। उसके विषय में भविष्यवाणी सुनी जाती है कि वह अठारह वर्ष की उम्र में दीक्षा धारण करेगा और छब्बीस वर्ष की उम्र में मुक्ति प्राप्त करेगा। ऐसे अल्पायुष्क पुरुष के साथ विवाह करने वाली को वैधव्य की यातना ही भुगतनी पड़ेगी।

चौथी सखी ने प्रतिवाद करते हुए कहा—जिसने मोक्ष

प्राप्त किया हो, उस मुक्त पुरुष की विधवा होने में हर्ज ही क्या है ! मोक्षगामी महापुरुष की पत्नी बनकर थोड़े ही दिन तक सुहागिन और अधिक समय तक विधवा रहना अच्छा ही है। चन्दन की लकड़ी का एक टुकड़ा भी अच्छा ही होता है। दूसरी एक गाड़ी भर लकड़ी क्या उस टुकड़े की बराबरी कर सकती है ? इसी प्रकार विद्युत्प्रभ भले ही अल्पायुष्क हों, मगर वह मोक्षगामी हैं तो ऐसे महापुरुष की थोड़े दिनों की सेवा भी हितकर ही कहलाएगी।

अंजना सखियों की बातचीत चुपचाप सुन रही थी। उसने किसी की बात में भाग नहीं लिया और न किसी तरफ रुचि प्रदर्शित की। अंजना को मौन देखकर पवनकुमार उस पर क्रुद्ध हुए। वह मन ही मन सोचने लगे—कैसी है यह अंजना जो परपुरुष की प्रशंसा और जिसके साथ सगाई हो चुकी है उसकी निन्दा सुनकर भी चुपचाप बैठी है ! जो स्त्री अपने पति की निन्दा सुनकर भी चुपचाप बैठी रहती है वह स्त्री किस काम की ?

पवनकुमार इस विचार से सहसा उत्तेजित हो उठा। वह परिस्थिति को भूल गया और अपने को संभालने में असमर्थ हो गया। उत्तेजना के वश होकर वह अंजना और निन्दा करने वाली उसकी सखी पर तलवार का प्रहार करने के लिए तत्पर हो गया।

पवनकुमार ज्यों ही म्यान में से तलवार निका-

लकर जब अंजना और उसकी सखी पर वार करने चला तब प्रहस्त ने कहा—'अरे, करते क्या हो? कहाँ जा रहे हो? जरा खड़े रहो और विचार करो।'

पवन०—सुनते नहीं हो, किस प्रकार मेरी निन्दा की जा रही है? फिर भी अंजना चुपचाप बैठी है! वह शांति के साथ मेरी निन्दा और परपुरुष की प्रशंसा सुन रही है। मै अंजना को और उस निन्दा करने वाली स्त्री को दण्ड दिए बिना नहीं रहूँगा।

प्रहस्त—जरा शांति रक्खो। इतने उतावले मत होओ। पहली बात तो यह है कि स्त्री अवध्य है। कोई स्त्री कैसा ही अपराध क्यों न करे, फिर भी उसे मार डालना योग्य नहीं है, क्योंकि स्त्री अबला होती है। इसके अतिरिक्त अंजना तो निर्दोष भी है। उसने अपनी सखी की बात का समर्थन नहीं किया है। अंजना की सखी सिर्फ बोली है और तुम वीर पुरुष होकर एक अबला स्त्री पर प्रहार करने को तैयार हो गए हो! यह क्या उचित है? जरा शांतिपूर्वक विचार करो। इस प्रकार उच्छृंखल बन जाना तुम्हें शोभा नहीं देता।

सच्चा मित्र वही है जो अपने मित्र को अनुचित कार्य करने से रोकता है। खराब मार्ग पर ले जाने वाला मित्र नहीं, शत्रु है। प्रहस्त पवनकुमार का सच्चा शुभचिन्तक मित्र । उसने पवनकुमार को समझाकर शांत किया और दोनों वम में बैठकर अपने स्थान पर चले गए।

पवनकुमार के मन से यह बात नहीं निकलती थी कि जो स्त्री अपनी निन्दा और परपुरुष की प्रशंसा सुनकर चुप बैठी रहती है, वह मेरे लिए किस काम की ? ऐसी स्त्री के साथ विवाह करने से क्या लाभ होगा ? 'प्रथमग्रासे मक्षिका-पातः' वाली बात हुई।

पवनकुमार ने अपने हृदय के विचार अपने मित्र प्रहस्त के सामने प्रकट किये। प्रहस्त ने कहा—भाई ! ऐसा विचार करोगे तो प्रत्येक स्त्री में कोई न कोई दोष नज़र आएगा। अगर तुम्हें ऐसी मामूली बातों से ही असन्तुष्ट होना है तो तुम्हारे लिए संयम धारण करना ही योग्य है।

पवन—अभी संयम धारण करने की योग्यता मुझ में नहीं है।

प्रहस्त—अगर संयम धारण करने की क्षमता तुम्हारे भीतर नहीं है तो फिर अंजना कुमारी के साथ ही विवाह करना योग्य है। किसी दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना उचित नहीं है। तुम्हारी स्वीकृति लेने के बाद ही पिताजी ने अंजना के साथ संबन्ध करना स्वीकार किया है। माता पिता को वचन दे चुके हैं उसका पूरी तरह निर्वाह करना तुम्हारा कर्तव्य है।

बाद अंजना जब मेरी हो जाएगी तब उससे बदला लिये बिना नहीं रहूँगा।

पवनकुमार के मन में इस प्रकार कपटभाव आजाने के कारण कितनी हानि हुई और जब सरलता आगई तो कितना लाभ हुआ, इस विषय पर फिर प्रकाश डाला जाएगा।

जो व्यक्ति माथे आई हुई विपत्तियों को भी संपत्ति बना लेता है, वह आत्मोद्धार करने के साथ-साथ जगत् के समक्ष एक उच्च आदर्श भी उपस्थित कर जाता है। कीड़ों-मकोड़ों की तरह जीवन व्यतीत करने वाले तो जगत् में बहुत मिलेंगे पर उन्हीं का जीवन उच्च, आदर्श तथा सफल गिना जाता है जिनका जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय बनता है। जिनके जीवन-प्रसंगों में से आत्मविकास के तत्त्व फूट निकलते हैं उनका जीवन धन्य है। ऐसे जीवन का बखान करना और सुनना लाभप्रद ही है। सती अंजना का जीवनचरित भी आत्मविकास के तत्त्वों से ओतप्रोत है। अतएव उसके जीवन-चरित को एकाग्रचित्त होकर सुनने वालों और थोड़े-बहुत अंशों में भी अनुकरण करने वालों को अवश्य ही आत्मलाभ होगा।

सती अंजना में कितना अथाह धीरज था, यह बात उसके वन की घटनाओं से भलीभांति जानी जा सकती है।

मिश्रकेशी द्वारा की गई विद्युत्पर्व की प्रशंसा सुनकर अंजना चुप क्यों रही? इसका कारण यह था कि अंजना

महापुरुषों की प्रशंसा में विघ्न-बाधा उपस्थित नहीं करना चाहती थी। लेकिन बेचारी अंजना को क्या पता था कि उसके मौन का क्या दुष्परिणाम होने वाला है?

मिश्रकेशी द्वारा की गई विद्युत्प्रभ की प्रशंसा सुनकर भी मौन रहने के कारण ही पवनकुमार अंजना पर क्रोधित हुआ था। यहाँ तक कि क्रोध के आवेश में वह दोनों के प्राण ले लेने के लिए भी उद्यत हो गया था। परन्तु प्रहस्त ने उसे समझा-बुझा कर शांत कर दिया। पवनकुमार उस समय शांत तो हो गया पर उसके हृदय का डंक दूर नहीं हुआ। अंजना के साथ विवाह न करने का उसने विचार किया था, पर प्रहस्त के कहने से उसे विवाह के लिए भी राजी होना पड़ा। राजी तो वह हो गया मगर अन्तःकरण की प्रेरणा या आकर्षण से नहीं, बल्कि अंजना से उसके मौन का बदला लेने के उद्देश्य से! विवाह किए बिना अंजना को वह उसके अपराध का दंड नहीं दे सकता था। और विवाह करने पर यह बदला सरल हो जायगा। वृद्ध-पुरुष पिताजी के वचन का निर्वाह करना भी उसके लिए आवश्यक था। इन्हीं सब कारणों से उसने इस विवाह का विरोध नहीं किया। उसने सोचा—मैं अंजना के साथ विवाह कर लूंगा तो पिता के आग्रह की रक्षा हो जायगी, माता पिता की आज्ञा का पालन हो जायगा और अंजना को उसके अपराध की सजा भी दी जा सकेगी।



# विवाह

——::::()::::——

पवनकुमार के विवाह की तैयारी होने लगी। राजा प्रह्लाद ने बड़े चाव से उसे दूल्हा बनाया और साथ लेकर मानसरोवर पर पहुँचा। इधर महेन्द्र भी अंजना के साथ वहां आ पहुँचा। पवनकुमार के साथ अंजना का विवाह-संबंध आनन्द के साथ स्थापित हो गया। पवनकुमार ने विवाह तो कर लिया लेकिन विवाह के समय वर में जो प्रसन्नता और प्रमोद दिखाई देता है, उसका कोई भी चिन्ह उसके चेहरे पर दिखाई न दिया।

राजा महेन्द्र और राजा प्रह्लाद दोनों साधारण राजा नहीं थे। उनकी संतानों का यह पहला ही विवाह हो रहा था। फिर भी उन्होंने तीन ही दिनों में विवाह का सारा काम काज अत्यन्त सादगी के साथ निवटा दिया। आज विवाह के नाम पर कितना समय नष्ट किया जाता है! एक विवाह के लिए अपना और अपने संबंधियों का महीना भर बिगाड़ देते

है। यह सब समय की कीमत न समझने का परिणाम है। पहले के लोग समय का मूल्य समझते थे और इसी कारण राजा जैसे असाधारण लोग भी तीन दिन में विवाह-कार्य निपटा लेते थे। विवाह के नाम पर जो समय वृथा नष्ट किया जाता है, वह अगर बचा लिया जाय और धर्म-कार्य में उसे व्यय किया जाय तो क्या विवाह का काम रुक जाएगा? क्या थोड़े समय में विवाह नहीं हो सकता? अगर हो सकता है तो फिर समय को निरर्थक नष्ट करना कौन-सी बुद्धिमत्ता है?

गृहस्थ चाहें तो पग-पग पर धर्म का आराधन कर सकते हैं। पर लोगों की समझ तो यह हो गई है कि जब तक उपाश्रय या धर्मस्थान में रहें तभी तक धर्म हो सकता है। धर्मस्थान से बाहर निकलने के बाद तो बस पाप ही पाप करना शेष रह जाता है! इस भ्रमपूर्ण मान्यता के कारण कितनी हानि हो रही है, इसका वर्णन करना कठिन है। तुम समझते हो कि धर्म सिर्फ उपाश्रय में ही हो सकता है तो क्या दुकान पर बैठने से श्रावक, श्रावक नहीं रहता? अहिंसा, सत्य आदि श्रावक के जो व्रत हैं उनका पालन तो व्यवहार में ही हो सकता है। ऐसी स्थिति में यह समझना कि धर्म सिर्फ उपाश्रय में ही हो सकता है, कितना भ्रमपूर्ण है!

भी दिया। राजा प्रह्लाद अपने पुत्र और पुत्रवधू को लेकर घर आया। प्रह्लाद और उनकी रानी केतुमती अंजना को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अंजना अपने नये घर में आई। उसने सासू और ससुर के चरणों में यथोचित नम्रता के साथ सिर झुकाया।



## ५

# पतिगृह में

——:o:——

अंजना के शील-स्वभाव में कोई त्रुटि नहीं थी। उसके सभी व्यवहार वैसे ही थे जैसे एक उच्च कुल की आदर्श गृहिणी के होने चाहिए। अतएव अंजना पर सभी प्रसन्न थे। अप्रसन्न था तो केवल पवनकुमार, जो पूर्व वैर से प्रेरित था। राजा प्रह्लाद ने अंजना के लिए एक सुन्दर महल बनवा दिया था। पवनकुमार को यह बात रुचिकर नहीं हुई। वह सोचता—पिताजी ने इसके लिए इतना सुन्दर महल क्यों बनवा दिया है! इसकी आवश्यकता ही क्या थी! फिर उसने विचार किया—अगर पिताजी को क्या पता है कि मुझे यह पत्नी पसंद नहीं है अथवा इसके प्रति मेरे हृदय में वैर भाव छिपा है। यह बात मालूम न होने के कारण वे अंजना का आदर करते, उस पर स्नेह रखते, यह स्वाभाविक है। परन्तु मैं किसी भी अवस्था में अंजना को प्रेम नहीं कर सकता। मैं अंजना को मन-वचन से त्याग चुका हूँ। पवन-

कुमार अंजना का मुँह तक नहीं देखते थे। अंजना की समझ में नहीं आता था कि आखिर पति की अप्रसन्नता का क्या कारण है? फिर भी वह स्वभाव से गम्भीर, कुलीन, विवेकशील और धैर्य वाली थी। वह धीरज के साथ अपना समय व्यतीत कर रही थी। कभी-कभी वह सोचा करती—ऐसा क्या अपराध मैंने किया है कि मेरे पतिदेव मुझ पर इतने अधिक रुष्ट रहते हैं? इस जन्म में तो मैंने कोई अपराध नहीं किया है। हाँ, पहले के जन्म में कोई अपराध अवश्य किया होगा, जिसका फल मुझे इस समय भुगतना पड़ रहा है। किये हुए कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। विना भोगे छुटकारा कहाँ?

श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि

अर्थात् किये हुए कर्मों को भोगे विना छुटकारा नहीं। इसी प्रकार श्रीभगवतीसूत्र में भी कहा है--

प्र०—भगव! सकडा कम्म वेदान्ति परकडा?
उ०—गोयमा! सकडा कम्म वेदन्ति, नो परकडा।

अर्थात् गौतम स्वामी ने प्रश्न किया--भगवन्! स्वकृत कर्म भोगने पड़ते हैं या परकृत? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फ़रमाया—हे गौतम! अपने किये कर्म ही भोगने हैं, दूसरे के किये कर्म नहीं भोगने पड़ते।

इस प्रकार अजना यह विचार करके धैर्य धारण करती

जाता है, फिर भी वह कंचन ही बना रहता है। ईख कोल्हू में पील दी जाती है फिर भी मिठास ही देती है, कटुवास नहीं। इसी प्रकार मुझ पर चाहे जैसी विपदा आ जाए, फिर भी मुझे पति का अनिष्ट नही सोचना है। मै तो पतिदेव की कुशल-कामना ही करती हूँ और स्वयं पवित्र रहना चाहती हूँ। कष्टों से घबराकर पति का अनिष्ट चाहूँगी तो मेरा ही अनिष्ट होगा। मै पति पर स्वप्न में भी क्रोध नहीं करना चाहती। मेरे इस भव के पतिदेव तो वही है-दूसरा कोई नहीं हो सकता। मैंने अपना यह जीवन उन्हीं के चरणों में समर्पित कर दिया है। ऐसी स्थिति में स्वप्न में भी मै उनका अनिष्ट नहीं चाहती।

अजना इस प्रकार के सद्विचारों द्वारा पतिदेव की कुशल कामना करती और अपनी उदासीनता मिटाती थी। अजना के महल में एक ऐसी खिड़की थी जिसके द्वारा वह प्रतिदिन पतिदेव के दर्शन कर लेती थी। एक बार पवनकुमार ने अजना को अपना दर्शन करते देख लिया। खिड़की द्वारा अपना दर्शन करते देखकर पवन सोचने लगा-'यह स्त्री तो मेरा पिण्ड ही नहीं छोड़ती!' और उसने वह खिड़की बन्द करवा दी।

यह एक ऐसी घटना थी कि अजना के हृदय में क्रोध - हो सकता था। परन्तु उसने हिम्मत के साथ अपने दे. पर काबू किया और तनिक भी क्रोध न उत्पन्न होने

दिया। वह सोचने लगी—यह तो मेरी परीक्षा हो रही है ! मुझे साहस नहीं खोना चाहिए और इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए।

राजकुमार का घोर अन्याय देखकर वसन्तमाला से फिर न रहा गया। वह अजना से कहने लगी-सखी ! तुम धर्म का विचार करके राजकुमार के अपराधों को क्षमा कर रही हो और उनकी मंगल-कामना करती हो; मगर राजकुमार के अन्याय की हद हो गई है। उन्होंने महल की खिड़की भी वन्द करा दी है। उनका यह व्यवहार कितना अनुचित है !

शांति के साथ अजना बोली-सखी ! उन्होंने जो किया सो ठीक ही किया है। अगर मेरे हृदय मे पति के प्रति सच्चा प्रेम है-अगर मेरे पति मेरे अन्तःकरण में मौजूद हैं तो फिर खिड़की के द्वारा उनका चेहरा देखने की आवश्यकता ही क्या है ? मैं अपने हृदय मे विराजमान हृदयदेव के दर्शन विना खिड़की ही कर लूँगी। अतएव उन्होने अगर खिड़की वन्द करवा दी है तो भी कोई हर्ज की वात नहीं।

इस प्रकार पति द्वारा परित्यक्ता अजना धैर्य के साथ विपत्ति को भी सम्पत्ति मान रही है। जो व्यक्ति विपत्ति और संपत्ति के समय अपना मन शान्त रखता है-हर्ष और विपाद से मन को अभिभूत नहीं होने देते वह अवश्य ही कल्याण का भागी होता है। अतएव सती अजना का यह चरित अनुकरणीय है।

विना किसी उचित कारण के अंजना का परित्याग करने के लिए पवनकुमार को दोषी और निन्दापात्र कहा जा सकता है। किन्तु अंजना का तिरस्कार करने के साथ उसने एक प्रशंसनीय कार्य भी किया। उस कार्य से पवनकुमार को प्रशंसा का पात्र भी माना जा सकता है। हमें दूसरों के दोष ही नहीं देखने चाहिए।

पवन राजकुमार थे। उन्हें अनायास ही दूसरी कन्या मिल सकती थी। अंजना के प्रति रुष्ट और असंतुष्ट होने के कारण दूसरी कन्या के साथ विवाह कर लेना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। उनके मित्रों ने दूसरा विवाह कर लेने के लिए पवनकुमार को प्रेरित भी किया होगा। लेकिन उन्होंने यही उत्तर दिया होगा–जब मैं एक स्त्री का चरित देख चुका हूँ तो फिर दूसरा विवाह करके अंजना की तरह दूसरी स्त्री का भी जीवन क्यों नष्ट करूँ? ऐसा करने का मुझे क्या अधिकार है? किसी स्त्री को संकट में डालने की अपेक्षा क्या यही अधिक हितकर नहीं होगा कि मैं स्वयं शुद्ध बनूँ?

हम पुरुष हैं और वह स्त्री है, इस प्रकार अभिमान से प्रेरित होकर आज बहुत-से पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं। किन्तु जैनधर्म के अनुसार स्त्री और पुरुष के अधिकार समान हैं। किसी को किसी का अधिकार छीन लेने का हक नहीं है।

पवनकुमार अंजना पर रुष्ट तो थे, फिर भी क्रोध के आवेश

में आकर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। वह ब्रह्मचर्य का पालन करने लगे। वास्तव में यह कितना ऊँचा आदर्श है! आज के पुरुष तो यह कहने को तैयार हो जाते हैं कि पुरुष होने के कारण हमें चाहे जितनी बार विवाह करने का अधिकार प्राप्त है! इस प्रकार कहने वाले सिर्फ स्त्री को ही पवित्र रखना चाहते हैं। उन्हें स्वयं पवित्र रहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मगर जो स्वयं पवित्र नहीं है उसे दूसरों को पवित्र रखने का अधिकारी कैसे माना जा सकता है?

मैं तुम्हें सदाचार के पालन का उपदेश देता हूँ। लेकिन मेरा खुद का ही जीवन पवित्र संयममय न हो तो ऐसी दशा में आप मुझे क्या कहेंगे? आप यही कहेंगे-महाराज! पहले अपना आचरण तो सँभालो! तात्पर्य यह है कि जो स्वयं पवित्र नहीं है वह दूसरों को पवित्र नहीं रख सकता। इस कथन का आशय यह नहीं कि आप हमारे संयम का बराबर ध्यान न रक्खें। आप साधुवर्ग के संयम का बराबर ध्यान रक्खें और साथ ही साथ अपनी पवित्रता का संरक्षण और पालन करें। आपको अपने गृहस्थधर्म का पालन करना चाहिए। साधु को श्रावक का और श्रावक को साधु का ध्यान रखना चाहिए। ऐसा करने से दोनों के धर्म का यथा-योग्य पालन होगा। अलबत्ता इस कथन का आशय यह नहीं समझना चाहिए कि दोनों में से एक वर्ग अगर अपने धर्म का यथोचित पालन न करे तो दूसरे वर्ग को भी नहीं

पालना चाहिए ! दूसरा अपने धर्म का पालन करे या न करे फिर भी हमें तो अपने धर्म का पालन करना ही चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह केवल स्वार्थ का ही साधन न करे वरन् परमार्थ का भी आराधन करे। पवन-कुमार सोच सकते थे कि मै पुरुष हूँ और पुरुषों में भी राज-कुमार हूँ। अंजना अपने कर्मो का फल भुगत रही है तो भुगते। मै स्त्री-सुख से वंचित क्यों रहूँ ? लेकिन पवनकुमार ने ऐसा स्वार्थपूर्ण विचार न करके ब्रह्मचर्य का ही शुद्ध रूप से पालन किया।

साधारणतया लोग अपने विषय में जो बात सोचते हैं वही दूसरों के विषय में नहीं सोचते। इसी कारण घोर अन्याय हो जाता है। आज पुरुषों में यह पद्धति प्रचलित हो गई है कि वे अपना स्वार्थ देखते हैं। उन्हें लेश मात्र भी यह विचार नहीं आता कि जो काम स्वयं उन्हें पसंद नहीं है वह स्त्रियों को कैसे पसंद आता होगा ! इस विषय में गुलिस्तां में एक कथा कही गई है। उसमें कहा है—

एक अमीर की स्त्री मर गई। अमीर के मित्रों ने उससे कहा—तुम्हारे पास अखूट धन-सम्पत्ति है। तुम दूसरा विवाह कर लो।

अमीर ने कहा—मुझे बूढ़ी स्त्री पसंद नहीं है।

मित्र—यह कौन कहता है कि तुम बुढ़िया के साथ विवाह करो। किसी नवयुवती के साथ शादी कर लो। तुम्हें

किस चीज़ की कमी है ?

अमीर—तुम मेरे कहने का मतलब नहीं समझे। मेरे कहने का आशय यह है जब मुझे बूढ़ी स्त्री पसंद नहीं है तो नवयुवती स्त्री को मुझ जैसा बूढ़ा क्यों पसंद आने लगा ? मै अपना ही मतलब समझूं और दूसरों के हिताहित का विचार न करूँ, यह किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ?

क्या आपको अमीर की बात युक्तिसंगत जान पड़ती है ? अगर वास्तव में आप अमीर के कथन को सत्य और न्यायसंगत समझते हैं तो आपको विवाह सम्बन्धी अन्यायपूर्ण कार्यों में कदापि भाग नहीं लेना चाहिए। जहाँ किसी वृद्ध का तरुणी के साथ विवाह होता हो वहाँ आपको सम्मिलित नही होना चाहिए। वृद्धविवाह में भाग लेने से तुम पाप के भागी होते हो और उसमें अपना सहयोग न देकर अपने आपको पाप से बचा सकते हो।

पवनकुमार के मित्र जब दूसरा विवाह करने का आग्रह करते तब वह इस आशय का उत्तर देते-परपुरुष की प्रशंसा सुनकर कुछ भी न बोलना—मौन रहना, यह अजना का व्यवहार मे सहन नहीं कर सका तो अजना यह कैसे सहन कर सकेगी कि मै दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर लूं ? ऐसी दशा मे दूसरी स्त्री के साथ विवाह करना मेरे लिए उचित नही है।

दूसरा विवाह न करने की पवनकुमार की दृढता से

अंजना को भी पर्याप्त आश्वासन मिलता था-कहना चाहिए कि एक प्रकार से वह प्रसन्न रहती थी। वह सोचती-भले ही राजकुमार मुझ पर रुष्ट हैं फिर भी शील का पालन करने में तो वह दृढ़ ही है। अंजना दिन भर इसी प्रकार सोचती-सोचती अपना समय व्यतीत करती थी। रात्रि में वह आत्मालोचन करती। वह सोचती रहती कि मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध बन गया है, जिसके कारण पतिदेव मुझसे रुष्ट रहते हैं? बहुत कुछ सोचने-विचारने पर भी पति के रोष का कोई कारण वह नहीं खोज पाती थी। अन्त मे वह इसी नतीजे पर पहुँचती थी कि पूर्व जन्म में किये हुए किसी पापकर्म के कारण ही मुझे यह कटुक फल भोगना पड़ रहा है। और वह सत्कार्य एवं सद्विचार मे ही प्रवृत्त रहती थी।

कभी-कभी अंजना की सखी वसंतमाला पवनकुमार की अप्रसन्नता के विषय में कुछ कहती अथवा पवनकुमार की निन्दा करने लगती तो वह उसे ऐसा कहने से रोक देती और कहती—सखी, पति की निन्दा मत करो। भले ही वह मुझसे रुष्ट हैं, फिर भी मेरे पतिदेव हैं। मैंने अपना जीवन उनकी सेवा में समर्पित किया है। तू कहती है कि ऐसा दुःखमय जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा तो पिता के घर अविवाहित रहना ही अच्छा था। मगर तेरा यह कथन भ्रमपूर्ण है, क्योंकि पिता के घर से यहाँ आने की भावना मैंने ही की थी। पिताजी ने जबर्दस्ती से मुझे घर से नहीं निकाला है।

जब मैंने विवाह करने की स्वीकृति दी तभी मेरा विवाह किया गया था। पिताजी ने मेरे जीवन को पवित्र एवं सुखी बनाने की दृष्टि से ही मेरा विवाह किया था। अब पति द्वारा परित्यक्त होकर अगर मुझे रहना पड़ता है तो इसमें किसी का अपराध नहीं है। मुझे तो अपने ही पाप कर्म का अपराध जान पड़ता है। मुझे तो पति के रुष्ट होने के कारण ही ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है परन्तु वे महासतियाँ कितनी पवित्र और सुशील थी जो स्वेच्छापूर्वक ही ब्रह्मचर्य का पालन करके अपना जीवन धन्य मानती थी।'

ब्राह्मी चन्दन बालिका भगवती राजीमती द्रौपदी,
कौशल्या च मृगावती च सुलसा सीता सुभद्रा शिवा ॥
कुन्ती शीलवती नलस्य दयिता चूला प्रभावत्यपि,
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिनमुखे कुर्वन्तु वो मंगलम् ॥

इन महासतियों ने स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य का विशुद्ध पालन किया था। यही कारण है कि प्रातःकाल उनका स्मरण किया जाता है।

अंजना ने वसन्तमाला को समझाते हुए कहा—बहिन ! पतिदेव मुझ पर रुष्ट हैं और इस कारण मेरा जीवन दुखी है, यह बात सच है। लेकिन पति के रुष्ट होने के कारण मैं ब्रह्मचर्य का पालन कर रही हूँ, यह भी क्या बुरा है ? पति चाहें तो दूसरी कुमारी के साथ विवाह कर सकते हैं, लेकिन जैसे भगवान् नेमिनाथ ने राजीमती का त्याग करके अन्य स्त्री

के साथ विवाह नहीं किया था, उसी प्रकार मेरे पति ने भी किसी दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने का विचार नहीं किया है। तो फिर मैं भी राजीमती के समान ब्रह्मचर्य का पालन क्यों न करूँ ?

अंजना इस प्रकार अपनी सखी को समझा कर शान्त करती और आप स्वयं भलीभाँति ब्रह्मचर्य का पालन करती एवं परमात्मा के ध्यान मे जीवन व्यतीत करती। अजना चाहती तो पिता के घर जा सकती थी। पर उसने ऐसा नहीं किया। वह एक-दो वर्ष नहीं, बाईस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन करती रही।

अजना की सखियाँ उससे कहतीं – आपकी भावना इतनी ऊँची है कि यह दुःख अधिक समय तक बना नहीं रह सकता। थोड़े ही समय में आपके दुःख का अन्त अवश्य होगा।

सखियो के इस सान्त्वनापूर्ण कथन के उत्तर में अंजना कहती—सखियों ! तुम्हारे ऐसे वचनों से मुझे धैर्य प्राप्त हो, यही मै चाहती हूँ।

इस प्रकार पवनकुमार और अजना-दोनों ही ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे थे। पवनकुमार ने सुविधा होते हुए भी विवाह नहीं किया और अजना ने इस परिस्थिति के लिए अपने कृत कर्मों को उत्तरदायी समझा।

वास्तव में कर्मों का कानून इतना अटल है कि उसमें ज़रा भी फेरफार नहीं हो सकता। कर्मों के विषय मे यह

नियम है कि जो कर्म किये जा चुके हैं, उन्हें प्रदेश अथवा विपाक से भोगना ही पड़ता है। शास्त्र में कहा है:—

कडाण कम्म ण न मोक्ख अत्थि।

अर्थात्-किये कर्मों को भोगे विना छुटकारा नहीं।

इस प्रकार जब किये कर्म भुगतने ही पड़ते हैं तो हाय-तोबा मचाते हुए क्यों भोगना चाहिए? दुःख के समय आर्त्तध्यान करने से क्या लाभ है? बिजली के लट्टू में जो प्रकाश आता है वह 'पावर हाउस' अर्थात् बिजलीघर से ही आता है। 'पावर हाउस' में से प्रकाश न आता तो लट्टू में वह कहाँ से होता? इसी प्रकार जो भी सुख या दुःख आता है वह अपने किये कार्यों के कारण ही आता है। जो अज्ञानी हैं वे सुख आने से प्रसन्न होते हैं और दुःख आ पड़ने पर विषाद से घिर जाते हैं। परन्तु ज्ञानी पुरुष सुख और दुःख में समभाव रखते हैं। वह मानते हैं कि यह सुख या दुःख मेरे कर्म रूपी 'पावर हाउस में से ही आया है। इस विचार के प्रभाव से ज्ञानी पुरुष सुख के समय फूल नहीं जाते और दुःख के समय घबराते नहीं हैं।

अंजना भी इस प्रकार कर्मफल का विचार करके धैर्य-पूर्वक वियोग को सहन कर रही थी। उनका धैर्य और उच्च भावना देखकर उसकी सखियां कहा करतीं थीं कि—सखी! तुम धन्य हो, पवित्र हो। तुम्हारा धैर्य और पवित्र भाव शीघ्र ही इस दुःख को समाप्त कर देगा।

कहा-रावण राक्षस तो है परन्तु है वह पराक्रमी और बलवान्। ऐसी स्थिति मे हमें क्या करना चाहिए ?

पुत्रों ने वरुण से कहा-पिताजी ! आप इस बात की चिंता न करें। हम रावण को समझाने का प्रयत्न करेंगे।

वरुण के पुत्र राजा रावण को समझाने गये। उन्होंने रावण से कहा-आप वरुणराज को किस उद्देश्य से बुलाना चाहते हैं ?

रावण—मै महाराज हूँ। सभी राजा मुझे नमन करते हैं, सिर्फ वरुण ही मुझे नमन नहीं करता। नमन करने के लिए ही उन्हें बुलाया था।

पुत्रों ने कहा-वरुण भी बड़ा राजा है। आपको सब के साथ एक ही तरीके से पेश नहीं आना चाहिए।

रावण-वरुण बड़ा राजा कैसे ? वह तो मेरे सारथी के समान है। मैं इतना शक्तिशाली हूँ कि उसे जरा-सी देर में ही पराजित कर सकता हूँ।

पुत्रों ने कहा—आप वरुण को साधारण व्यक्ति समझते हैं, परन्तु एक ओर वरुण अपने हाथ शस्त्र लें और दूसरी ओर आप अपने हाथ में शस्त्र ग्रहण करके लड़ें, तो ऐसा करने में आपका क्या बड़प्पन रहा ?

रावण ने गर्व के साथ कहा—मेरे सामने वरुण की शक्ति की बिसात ही क्या है ? उसे पराजित करना मेरे बाएँ हाथ का काम है और मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसके सामने मै शस्त्र

नहीं उठाऊँगा। इतना ही नहीं, अगर उसने शस्त्र ग्रहण किया होगा तो भी मैं विना शस्त्र के लड़ूँगा।

वरुणपुत्रों ने पिता से आकर कहा—पिताजी! रावण मानता नहीं है। आप युद्ध करने के लिए तैयार रहिए। हमने उसे निश्शस्त्र होकर लड़ने को वचनबद्ध कर लिया है। वह शस्त्ररहित होकर ही आपके साथ लड़ेगा।

रावण ने खरदूषण नामक सेनापति को वरुण के साथ युद्ध करने के लिए भेज दिया। खरदूषण रावण का बहिनोई था। वरुण के पुत्रों ने खरदूषण के साथ युद्ध किया। रावण के वचन के अनुसार खरदूषण निश्शस्त्र था। अतएव वरुण के पुत्रों ने उसे पराजित कर दिया।

खरदूषण के पराजित होने के समाचार पाकर रावण सोचने लगा—अब क्या करना चाहिए? मेरे पास कौन आया था, जिसने मुझे युद्ध में शस्त्रविहीन होकर लड़ने के लिए वचनबद्ध कर लिया है? अब वरुण को किस भाँति पराजित किया जाय? मैंने युद्ध में निश्शस्त्र होकर लड़ने की प्रतिज्ञा करके भारी भूल कर डाली है!

रावण चिन्ता में पड़ गया। उसे चिन्तातुर देखकर एक मन्त्री ने कहा—आपने निश्शस्त्र होकर लड़ने की जो प्रतिज्ञा की है, वह आप और आपके भाइयों तक ही सीमित रखनी चाहिए। आपके अधीन दूसरे जो राजा हैं उन्होंने ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। आप किसी चतुर और पराक्रमी सामंत को

वरुण के साथ युद्ध करने के लिए सशस्त्र सेना के साथ भेजिए। प्रह्लाद जैसे चतुर सामंत के रहते आपको चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?

राजा रावण को यह सलाह पसंद आई। उसने तुरन्त ही प्रह्लाद राजा के पास एक पत्र भेजकर कहलाया—वरुण को जीतने के लिए तुम्हारी आवश्यकता है। अत तैयार होकर वरुण के साथ युद्ध करने जाओ।

पत्र पढ़कर राजा प्रह्लाद ने विचार किया—इस समय स्वामी पर संकट आ पड़ा है। संकट के समय स्वामी की सेवा करना आवश्यक है। इस तरह विचार कर वह युद्ध की तैयारी करने लगे। पिता को युद्ध की तैयारी करते देख पवनकुमार ने अपने मित्र से पूछा—पिताजी कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हैं ? मित्र ने सारी वात पवनकुमार को वतलाई। पवनकुमार ने कहा—वरुण के साथ युद्ध करना कोई निजी काम नहीं है, फिर पिताजी निष्कारण ही लड़ने क्यों जा रहे हैं ?

पवनकुमार का मित्र वोला—स्वामी-सेवक का सम्बन्ध ऐसा ही होता है। इस सम्बन्ध के कारण पिताजी को संकट दूर करने के उद्देश्य से लड़ने जाना पड़ेगा।

पवनकुमार—अगर स्वामी-सेवक का सम्बंध ऐसा होता है तो पिता-पुत्र का सम्बन्ध भी ऐसा ही होना चाहिए। पता और पुत्र का सम्बन्ध पवित्र सम्बंध है। इस सम्बन्ध

की दृष्टि से पिता के बदले मुझे युद्ध में जाना चाहिए।

पवनकुमार ने अपने मित्र से फिर कहा—जब मैं बलवान् और योग्य हूँ तो यह कैसे हो सकता है कि पिताजी युद्ध में जाएँ और मैं घर पड़ा रहूँ !

पवनकुमार अपने पिता के पास पहुंचे। यथोचित अभिवादन करके कहने लगे—पिताजी ! आप कहाँ जाने की तयारी कर रहे हैं ?

राजा प्रह्लाद ने सब समाचार सुनाकर कहा—मैं राजा रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने जा रहा हूँ।

पवनकुमार बोले—मेरे रहते, वरुण के स जाए, यह मुझे शोभा नहीं देता। कृपा कर रम नहीं है और और मुझे युद्ध करने जाने दीजिये। ना कोई युक्ति

प्रह्लाद—बेटा ! युद्ध करना ने उन्हें -में नहीं है। वरुण राजा और उसकी सेना युद्धकुशल है और इसी कारण उसके साथ युद्ध करने की रावण ने मुझे आज्ञा दी है। ऐसी स्थिति में मैं तुझे कैसे भेज सकता हूँ ?

पवनकुमार—पिताजी ! क्या मैं आपका आज्ञाकारी पुत्र नहीं हूँ, कि आप मुझे युद्ध में जाने की मनाई कर रहे हैं ? क्या आप मुझे कायर समझते हैं ? अगर सचमुच ही आप मुझे कायर नहीं समझते तो फिर किस कारण से युद्ध में जाने का निषेध करते हैं ? जब राजा रावण अपनी ओर से आपको युद्ध करने के लिए भेज रहा है तो फिर

आपकी ओर से—आपके बदले में युद्ध करने क्यों नहीं जा सकता ? इसमें अनुचित क्या है ? क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ, जो आपकी तरफ से युद्ध में न जा सकूं ?

प्रह्लाद—पुत्र ! यह कैसे कहा जा सकता है कि तू मेरा पुत्र नहीं है ? तू मेरा प्यारा पुत्र है। फिर भी जो काम मुझे ही करना चाहिए उसके लिए तुझे कैसे भेज सकता हूँ ? अभी तक तुझे युद्ध सम्बन्धी पूरा अनुभव भी नहीं है।

पवनकुमार—क्या यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा ? क्या मैं इतना अधिक कायर हूँ ? मैं कायर हूँ या वीर हूँ, यह जानने के लिए यह एक है। इसके लिए जाने दीजिए। अगर मैं वरुण को पराजित करूंगा तो आप की प्रशंसा होगी और मुझे भी अनुभव मिल सकेगा। अतएव आप मुझे युद्ध में जाने की आज्ञा दें।

पवनकुमार की बातें सुनकर प्रह्लाद विचार करने लगे—पवन ठीक कह रहा है। अगर सचमुच ही पवन, वरुण को पराजित कर देगा तो मेरी प्रशंसा होगी और प्रतिष्ठा बढ़ेगी। पवनकुमार को युद्ध का अनुभव होने के साथ-साथ आत्म-संतोष भी होगा। यह विचार कर प्रह्लाद ने पवनकुमार को युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दे दी।

चीन देश के संबंध में सुना जाता है कि वहाँ पुत्र कोई उत्तम काम करता है तो उसके पिता का सन्मान किया जाता है और पद कभी पिता को ही दिया जाता है। यह पद्धति

अनेक दृष्टियों से योग्य है क्योंकि जिन्हें पदप्रतिष्ठा की आवश्यकता होगी वे अपनी संतान को योग्य बनाएँगे ही। संतान प्रायः माता-पिता के अनुरूप ही बनती है। अकसर वीर पिता का पुत्र वीर बनता है और कायर का पुत्र कायर होता है।

पवनकुमार रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने जा रहे हैं, यह बात वायुवेग से नगर भर में फैल गई। पवनकुमार जाने की तैयारी करने लगे। वसंतमाला ने भी यह समाचार सुना। समाचार पाते ही वह अंजना के पास दौड़ी आई और कहने लगी—बहिन! तुमने सुना है या नहीं कि राजकुमार पिता के बदले स्वयं वरुण के साथ युद्ध करने जा रहे हैं। युद्ध करना सरल काम नहीं है और निष्कारण अपने ऊपर युद्ध का भार ओढ लेना कोई बुद्धिमत्ता भी नहीं है। पिताजी युद्ध के लिए जाते थे तो उन्हें जाने देना था। पर राजकुमार ने तो उन्हें जाने से रोक कर स्वयं जाना तय किया है। मुझे तो यह काम ठीक नहीं जान पड़ता।

वसन्तमाला की बात के उत्तर में अंजना चाहती तो कह सकती थी कि राजकुमार वास्तव में बुद्धिहीन हैं। लेकिन उसने अपने पति के संबंध में कोई भी निन्दात्मक बात नहीं कही। कहा तो यही कहा कि राजकुमार जो कुछ कर रहे हैं वह क्षत्रियों के लिए उचित ही है, क्षात्रधर्म के अनुकूल ही है। पिता के बदले पुत्र का युद्ध में जाना अनुचित कैसे कहा जा सकता है? भले ही राजकुमार मुझसे रुष्ट हैं, तथापि

उनके उचित कार्य को मैं अनुचित नहीं कह सकती। मेरे खयाल से राजकुमार ने पिता का भार अपने कंधों पर लेकर ठीक ही किया है। पिता का भार हल्का करना सपूत का कर्त्तव्य ही है। राजकुमार अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए ही युद्ध मे जा रहे है।

वसन्तमाला बोली--राजकुमार को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान ही कहाँ है? वह कर्त्तव्य पालन करना जानते होते तो क्या तुम्हारे प्रति अपना कर्त्तव्य न पालते?

अंजना—सखी, तू भूल रही है। जो पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य पालता है वह पत्नी के प्रति भी कर्त्तव्य का पालन कर सकेगा। इससे विरुद्ध, जो पिता के प्रति कर्त्तव्यभ्रष्ट होगा वह पत्नी के प्रति अपना कर्त्तव्य कैसे पाल सकेगा?

यहाँ जरा इस बात पर विचार कीजिए कि आजकल की सामाजिक दशा कैसी है? आज तो पत्नी के लिए पिता की अवहेलना की जाती है। और पत्नी यह देखकर फूली नहीं समाती कि मेरे लिए पति अपने पिता की भी अवहेलना करते हैं! मगर ऐसे पति और पत्नी अन्त में दुःख के ही भागी बनते हैं।

अस्तु, अंजना के कथन के उत्तर में वसन्तमाला कहने लगी—अगर आपकी दृष्टि में राजकुमार का युद्ध के लिए जाना उचित है तो ठीक है। अब इस विषय में मुझे कुछ भी नहीं कहना है। लेकिन सखी, एक बात की तरफ मै तुम्हारा ध्यान

अवश्य खींचना चाहती हूँ। और वह यह है कि युद्ध करना कोई बच्चों का खेल नहीं है। युद्ध जीवन और मरण का खेल है। युद्ध में जाने के बाद राजकुमार से आपका मिलाप होगा या नहीं, यह कौन कह सकता है ? इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप राजकुमार से मिलने के लिए एक पत्र उन्हें लिखिए।

अंजना—सखी, राजकुमार को पत्र लिखने की क्या आवश्यकता है ! कौन जाने, किस कारण वह मुझ से रुष्ट हैं ? हो सकता है कि उनके रोष का कारण मेरा कोई पाप ही हो। जब मेरे पापकर्म का अन्त हो जाएगा तब राजकुमार बिना ही किसी प्रयत्न के, मुझे सेवा करने का अवसर देंगे। इसके सिवाय, राजकुमार तो मेरे हृदय-मंदिर में विराजमान ही हैं। अगर साक्षात मिलन न हो तो भी क्या हर्ज है ?

वसन्तमाला—बहिन, तुम ठीक कहती हो, फिर भी राजकुमार को अगर एक पत्र लिख दो तो हानि ही क्या है ? तुम अपने जो विचार मेरे सामने प्रकट करती रहती हो वही विचार पत्र में लिख डालो।

इस प्रकार वसन्तमाला ने राजकुमार के नाम एक पत्र लिखने का अत्यन्त आग्रह किया। सखी के अनिवार्य आग्रह को मानकर अंजना ने राजकुमार पवन के नाम एक पत्र लिखा। उस पत्र का आशय कुछ ऐसा था कि आप पिता के ऊपर का भार ओढ़ने को रणभूमि पर लेकर युद्ध करने जा रहे हैं, यह समाचार जानकर मुझे प्रसन्नता हुई है। मेरे लिए

यह गौरव की बात है कि आप अपने कर्त्तव्य का पालन करने जा रहे हैं। मैं आपके चरणों में शतशः प्रणाम करती हूँ और यह प्रार्थना भी कि आप मुझे भूल न जाएँ।

अंजना ने सरल भाव से यह पत्र लिखा और वसंतमाला के हवाले कर दिया। वसंतमाला पत्र लेकर जब पवनकुमार के पास गई तो वह युद्ध की तैयारी में लगे थे। उसने पवन-कुमार के हाथ में पत्र रख दिया। पवनकुमार ने पत्र ले लिया और लेते ही पूछा—'मैं इस समय काम में उलझा हूँ। ऐसे मौके पर तू किसका पत्र लेकर आई है?' इतना कहकर पवन ने पत्र पढ़ने के लिए उस पर निगाह डाली। पत्र के नीचे अंजना का नाम देखकर वह लाल-पीला हो उठा। उसने तुरन्त-ही पत्र को फाड़कर फेंक दिया। लाल-लाल आँखें निकाल कर उसने वसंतमाला से कहा-'ले, अपना पत्र वापिस ले जा। मैं जिसका नाम भी सुनना नहीं चाहता, उसका पत्र इस समय पढ़ने की मुझे फुर्सत नहीं है!' अंजना के पत्र की यह दशा देखकर और पवनकुमार की निष्ठुर बात सुनकर वसन्तमाला रोती-रोती अंजना के पास आई। वसंतमाला आखिर तो दासी ही ठहरी! उसने अंजना के सामने पवन-कुमार के विरुद्ध बहुत-कुछ कह डाला। मगर अंजना बड़ी धीरज के साथ सभी कुछ सुनती रही। उसने उत्तर में केवल इतना कहा-राजकुमार ने पत्र फाड़ डाला तो कौन बड़ी बात हो गई? जब वह मेरे हृदय में बसे हुए ही है तो वास्तव में

उन्हें पत्र लिखने की आवश्यकता ही नहीं थी। लेकिन न मानी ही नहीं। तेरे आग्रह के कारण मैंने पत्र लिख दिया था। मगर इससे यह बात तो साफ़ मालूम हो गई कि राजकुमार सत्यप्रिय हैं। उन्होंने दिल में किसी भी प्रकार का कपट न रख अपनी सत्यप्रियता का परिचय दिया है। मेरे लिए यह कम आनन्द की बात नहीं है।

अंजना की बात सुनकर ताना मारती हुई वसन्तमाला बोली—ऐसे ही होंगे सत्यप्रेमी! सत्य के प्रेमी क्या किसी को इस प्रकार कष्ट दे सकते हैं?

उसने वसंतमाला से कहा—पतिदेव युद्ध के लिए रवाना हो रहे हैं। इस समय उनके दर्शन कर लेना चाहिए और उन्हें शुभ शकुन भी बताना चाहिए।

मगर वसंतमाला के दिल मे पत्र का अपमान करना तो काँटे की तरह चुभ रहा था। उसने फिर वही बात दोहराई और दर्शन करने के लिए जाने का विरोध किया। फिर भी अजना ने उसकी बात अनसुनी कर दी और दर्शनार्थ जाने तथा शुभ शकुन दिखलाने का अपना इरादा पक्का रक्खा।

अञ्जना सुन्दर वस्त्र पहन कर और हाथ में दही का कटोरा लेकर ऐसी जगह खड़ी हो गई जहाँ से पवनकुमार निकलने वाले थे। पवनकुमार ने देखा—कोई स्त्री शुभ शकुन दिखलाने के लिए खड़ी है। पर जब वह नजदीक आये और उन्होंने जाना कि यह अजना है तो उनके क्रोध का पार न रहा। क्रोध के आवेश में मनुष्य कौन-सा जघन्य काम नहीं कर बैठता ? पवनकुमार ने दही के कटोरे में एक लात जमाई। दही जमीन पर जा गिरा। इस प्रकार अंजना का तिरस्कार करके पवनकुमार आगे बढ़े।

तिरस्कृत अंजना भावनाओं के तूफान में उड़ती-उड़ती अपने महल में आ गई। उसने वसंतमाला से कहा—बहिन! मेरे पाप-कर्मों का उदय आया है। मै किसी भी उपाय से अपने पति को संतुष्ट नहीं कर सकती। अब मेरे लिए एक ही उपाय शेष है और वह है अनशन व्रत धारण करना।

ऐसे पाप-कर्मों के फल से छुटकारा पाने का दूसरा कोई भी उपाय मेरी समझ में नहीं आता। इसलिए अनशन व्रत धारण करके मैं अपनी आत्मा की शुद्धि करना चाहती हूँ। मैंने यह निश्चय कर लिया है।

वसंतमाला बोली—सखी, युद्ध में जाते समय तो शत्रु के साथ भी अच्छा व्यवहार किया जाता है। मगर तुम तो शुभ शकुन बनाने गईं और राजकुमार ने तुम्हारा उलटा अपमान किया। यह शकुन का अपमान नहीं है और न तुम्हारा ही। मेरी समझ में तो राजकुमार ने अपना ही अपशकुन किया है।

वसंतमाला की बात के उत्तर में अंजना कह सकती थी—वास्तव में तेरा कहना सही है। जिन्होंने मेरा अपमान किया है उनका भला कैसे हो सकता है? मगर अंजना ने ऐसा कुछ भी न कहते हुए सिर्फ यही कहा—सखी, इस तरह पति के प्रति की बात न कर। मेरा रोम-रोम सदा-सर्वदा उनका हित ही चाहता है। उन्होंने जो अपमान किया है वह मेरा नहीं वरन धर्म का अपमान किया है। धर्म का अन्त धैर्य धारण करने से ही हो सकता है, दूसरे का अहित चाहने से नहीं। इसलिए मैं हृदय से यही चाहती हूँ कि पतिदेव विजयी हों, उनका कल्याण हो और मेरा दिया हुआ शुभ शकुन सफल हो।

तेजी से कहने लगी—जिसने तुम्हारा घोर अपमान किया है उसका कल्याण चाहने से लाभ ही क्या है ?

अंजना—दूसरे का कल्याण चाहने से तुझे चाहे कोई भी लाभ दिखाई न देता हो पर मैं तो अनेक लाभ देखती हूँ। मेरे धर्मगुरु ने मुझे समझाया है कि अपमानजनक स्थिति सहन करके भी दूसरे का भला चाहने से हानि नहीं बल्कि लाभ ही लाभ है। अपनी आत्मा काम, क्रोध आदि औदयिक भावों से किसी भी स्थिति के कारण न पहुँच पावे तो आत्मा का लाभ ही है। जब पति स्थूल युद्ध करने गए हैं तो मेरे लिए यही उचित होगा कि मैं यहाँ सूक्ष्म युद्ध करूँ अर्थात्-काम, क्रोध आदि शत्रुओं के साथ घमासान करूँ।

वसंतमाला, अंजना की बात से कुछ प्रभावित हुई। फिर भी वह कहने लगी—सखी, तुम्हारी बातें तो बड़ी अनोखी हैं।

अंजना—यह भी अच्छा ही हुआ कि अशुभ में से भी तेरे लिए कुछ शुभ परिणाम निकला। जो बात तू अभी तक नहीं समझी थी, अब समझ गई।



पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त को बुलाया। प्रहस्त के आने पर पवनकुमार कहने लगा—भई ! मेरी नींद उचट गई है। आज हृदय में न जाने किस प्रकार का विचार-मंथन हो रहा है !

प्रहस्त—आपने बड़ा अनुचित कार्य किया है। ऐसी स्थिति में नींद आ भी कैसे सकती है !

पवन०—ऐसा कौन-सा अनुचित काम मैंने कर डाला है कि नींद ही मेरे लिए हराम हो जाए ?

प्रहस्त—वह सती आपको शुभ शकुन बताने आई और आपने बिना कारण ही उसका तिरस्कार किया। यह क्या कोई अच्छा काम है ? उसी समय मेरे दिल को सख्त चोट पहुँची थी। पर कहूँ तो किससे कहूँ ? आज कहने का अवसर मिला है तो कह रहा हूँ।

पवन०- क्या तुम्हें नहीं मालूम है कि स्त्रियाँ कितनी क्रूर होती हैं ?

प्रहस्त—पुरुष भी क्रूर होते हैं। आप जैसे समझदार और उच्च श्रेणी के लोग भी अपने पौरुष का क्या दुरुपयोग नहीं करते ? आपके प्रति अजना देवी का कितना प्रेम है ! इसी प्रेम के कारण वह आपके घर में पड़ी हैं और तिरस्कार तथा कष्ट भोग रही हैं। क्या वह अपने पिता के घर नहीं जा कती थीं ? आपकी तो उनके प्रति सद्भावना तक नहीं है और वह आपके प्रति प्रेम भाव रखती हैं। वह अपना प्रेम

प्रदर्शित करने के लिए आपको शुभ शकुन दिखाने आई और आपने उनका घोर तिरस्कार किया ! क्या यह भूलना नहीं है ?

पवन०—तुम्हारा कहना सही है । मगर जब मिश्रकेशी दासी अंजना के सामने परपुरुष की प्रशंसा कर रही थी और अंजना उसे चुपचाप सुन रही थी तब क्या तुम मेरे साथ नहीं थे ?

तो हो ही चुकी थी। अब प्रहस्त की बातों से उसका हृदय अधिक साफ हो गया। हृदय की कठोरता सरलता एवं कोमलता के रूप में परिणत हो गई। चकवी की घटना के विषय में वह सरलभाव से सोचने लगे—चकवा, चकवी को कुछ देता नहीं है। फिर भी चकवी के हृदय में उसके प्रति ऐसा प्रेम है कि वह चकवा के दुःख से दुःखी हो रही है और करुण विलाप कर रही है। अंजना के हृदय में अगर मेरे प्रति प्रेम होगा तो वह भी इसी भांति दुःखी हो रही होगी! अभी तक तो वह भावी सुख की आशा से जीवित रही और जैसे-तैसे करके दुःख के दिन काटती रही है। लेकिन आते समय मैंने उसका जो तिरस्कार कर दिया है, उस तिरस्कार के बाद किस आशा पर जीवित रह सकेगी? लेकिन अब मुझे करना क्या चाहिए? अगर लौट कर अंजना के पास जाता हूँ तो पिताजी और दूसरे लोग कहेंगे कि जो स्त्री के मोह में पड़ा है वह युद्ध में जाकर क्या खाक विजय प्राप्त करेगा! अगर नहीं जाता हूँ तो मुझे भ्रम है कि दुःखों से ऊब कर अंजना कहीं अपने प्राण न खो बैठे! इस दुविधा में मैं क्या करूँ?

आखिर पवनकुमार ने अपनी दुविधा प्रहस्त के सामने रख दी। प्रहस्त ने विचार कर कहा—इस विषय में आप तनिक भी चिन्ता न करें। इस समय हमारे सामने दो मुख्य कार्य हैं। इन दोनों में से किसी एक का त्याग करना पड़ेगा।

आ सकता था ? आज दिखाई देने वाले विमानों का तो अभी-अभी आविष्कार हुआ है, परन्तु कथाओं में आकाशगामी विमानों की बात तो बहुत पहले ही लिखी जा चुकी है।

पुरानी स्मृतियां पवनकुमार के अन्तःकरण में जाग उठीं। वह सोचने लगा-यही वह सरोवर है जहाँ मेरा विवाह-संस्कार हुआ था। और आज, इतने वर्षों के बाद, इसी सरोवर पर यह चकवी मानों कोई अस्फुट संदेश मुझे सुना रही है। उस दिन का विवाह तो नाम मात्र को ही था, असली विवाह तो मेरा आज हो रहा है! दैव की गति कितनी अनोखी है।

पवनकुमार ने अजना के पास जाने का पक्का संकल्प कर लिया। चकवी इस संकल्प में निमित्त कारण बनी। मानों चकवी के रूप में कोई अदृश्य शक्ति ही पवनकुमार को अजना के प्रति आकर्षित कर रही थी। अदृश्य शक्ति अपना प्रभाव किस प्रकार डालती है, यह दिखाई नहीं देता, फिर भी वह बड़ी प्रबलता के साथ अपना कार्य करती रहती है। अदृश्य शक्ति किस तरह कार्य करती है, यह बताने के लिए यहाँ एक प्रासंगिक घटना बतलाई जाती है:—

एक मज़दूर था। मज़दूरों की स्थिति बड़ी बेढंगी होती है। अगर वह किसी दिन मज़दूरी न करे तो उसे भूखा रहना पड़ता है। खास कर वर्षा ऋतु में तो मज़दूरों की हालत और भी खराब हो जाती है। इस ऋतु में उन्हें बराबर काम

नहीं मिलता। एक दिन जोरों की वर्षा हुई और इस कारण उस मज़दूर को कोई काम नहीं मिला। वह इसी चिन्ता में बैठा था कि कल क्या होगा? इतने में एक सेठ उसके घर आया। उसने कहा-यह दो हजार की थैली है। अगर अमुक गाँव में, अमुक के घर पहुँचा आओ तो आठ आना मज़दूरी दी जाएगी। मजदूर ने थैली ले ली और नियत जगह पहुँचाना स्वीकार कर लिया।

उसी मजदूर के घर के पास एक अफगानी पठान रहता था। उसने सोचा—यह रुपयों की थैली लेकर पर गाँव जा रहा है। आज लूटने का अच्छा अवसर मिला है! रास्ते में मजदूर के प्राण लेकर रुपया लूट लेना कोई कठिन बात नहीं है। यह सोचकर पठान ने कहा-मुझे भी किसी काम से उस गाँव जाना है।

मज़दूर ने कहा—चलो, एक से दो भले। अच्छा हुआ कि तुम्हारा साथ मिल गया।

पठान ने अपनी बन्दूक ले ली। उसने सोचा-इसी बंदूक से मज़दूर का काम तमाम कर दूँगा और उससे रुपया ले लूँगा। बेचारे भोले मजदूर को पठान की बदनियत का पता नहीं था। दोनों रवाना हुए। जब वह रास्ते में जा रहे थे तो अचानक घनघोर घटा छा गई और मूसलधार पानी बरसने लगा। दोनों के कपड़े पानी में भींज गए। दोनों एक सघन पेड़ के नीचे जा खड़े हुए। वर्षा होते देख मजदूर

कहने लगा—लोग परमात्मा-परमात्मा चिल्लाते हैं पर परमात्मा है कहाँ? अगर सचमुच परमात्मा होता तो हम जैसे गरीबों के ऊपर दया न करता? देखो, न मेरे सारे कपड़े पानी से तरबतर हो गए हैं और दूसरे कपड़े मेरे पास हैं नहीं।

मजूर की बात सुनकर पठान ने कहा—तुम यही समझ लो कि खुदा ने तुम्हारे ऊपर आज बड़ी मेहरबानी की है।

मजूर—पानी बरसने में मेरे ऊपर खुदा की क्या मेहरबानी हुई?

पठान—देख, यह बंदूक मै इसलिए लाया था कि रास्ते में तुम्हें इससे ठिकाने लगा दूँगा और तुम्हारे पास जो रुपए हैं, छीन लूँगा। मगर कुदरत को तुम्हारी मौत मंजूर नहीं थी। मूसलधार पानी बरसा और बंदूक में डाला बारूद गीला हो गया। अब यह बंदूक बेकार है। इस प्रकार तू कुदरत की मेहर से ही आज बच सका है। पानी न बरसा होता तो आज तुम इस बंदूक के शिकार हो गए होते और तुम्हारे पास के रुपए मेरे कब्जे में होते। तुम चाहो तो मुझसे बदला ले सकते हो। मगर सच्ची बात मैंने तुम्हें बता दी।

मजूर, पठान की बात सुनकर प्रसन्न हुआ। उसे ऐसा लगा, मानों उसने नया जीवन पा लिया हो। वह अपने प्राणों रक्षा के लिए परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। वह सोचने लगा—मैं बाहर ही बाहर देख रहा था, पर कौन

जानता है कि भीतर ही भीतर कुदरत की करामात कैसी है? दरअसल दुख का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण ही मजूर वर्षा और परमात्मा को कोस रहा था।

कहने का आशय यह है कि लोग तात्कालिक कष्ट से घबरा जाते हैं और धैर्य छोड़ बैठते हैं। वे यह नहीं सोचते कि इस कष्ट के पीछे अदृश्य शक्ति क्या काम कर रही है? ज्ञानी जनों का कथन है कि अदृश्य शक्ति पर भरोसा रक्खो। जैसे तुम्हें शक्कर की मिठास पर अटल विश्वास है, तुम भली-भाँति और निश्चित रूप से मानते हो कि शक्कर मीठी ही होती है—कटुक नहीं हो सकती, इसी प्रकार ज्ञानी जनों के कथन पर भी अटल श्रद्धा रक्खो। कुछ लोग ऐसे हैं जो साधारण लोगों की बात पर तो विश्वास कर लेते हैं, मगर 'प्राण जाएँ पर वचन न जाई' इस प्रकार की दृढ़ प्रतिज्ञा वाले महात्माओं की बात पर विश्वास नही करते। यह एक गंभीर भूल है। महत्माओं का बताया मार्ग सदा कल्याणकारी ही होता है। उनके बताए मार्ग पर चलने में कभी अविश्वास मत करो। एक मनुष्य ने पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज से कहा—'महाराज! जैनों की अहिंसा ने भारत को बड़ी हानि पहुँचाई है। इस अहिंसा ने देश को कायर बना दिया है।' पूज्यश्री ने इस आरोप के उत्तर मे कहा—मालूम होता है आपने अहिंसा और सत्य का आचरण ही नहीं किया है और इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। अहिंसा और सत्य

का आचरण करने वाला तो वीर ही होगा। कायर इनका आचरण नहीं कर सकता। कायर में इतना सामर्थ्य ही नहीं होता कि अहिंसा और सत्य के आचरण में दृढ़ रह सके। इसीलिए अहिंसा-धर्म वीरों का धर्म कहलाता है। जिन्होंने अहिंसा और सत्य का अभ्यास किया है और जिन्हें उन पर दृढ़ विश्वास हो गया है, वे अपने शरीर पर भी ममता नहीं रखते।

तुम भी इस प्रकार की वीरता धारण करो और तुमने जो सत्य धर्म स्वीकार किया है उस पर विश्वास रक्खो। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा।

सती अंजना के हृदय में धर्म के प्रति दृढ़ विश्वास था। इस विश्वास के प्रताप से कष्ट के समय अदृश्य शक्ति उसे धीरज बँधाती थी। बाईस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करने की शक्ति भी धर्म के प्रति दृढ़ विश्वास होने के कारण ही सती के जीवन में उत्पन्न हो सकी थी। संसार में धर्म की शक्ति अपूर्व और अजेय है। धर्म की शक्ति में अद्भुत आकर्षण शक्ति भी होती है। पवनकुमार को अंजना के प्रति आकर्षित करने में भी धर्म की अदृश्य शक्ति काम कर रही थी।

अन्ततः पवनकुमार ने विमान में बैठकर अंजना के महल में जाने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार दोनों न में बैठकर अंजना के महल में आ पहुँचे। प्रहस्त ने कुमार से कहा—जरा खड़े रहो और देखो कि यहाँ

क्या बातें हो रही हैं ? चुपचाप सुनो। स्त्रियों के भाव उनकी एकान्त में होने वाली बातचीत से मालूम हो सकते हैं। अभी आप मेरे कहने से यहाँ आये है, मगर मेरी बात पर विश्वास मत कीजिए। यहाँ की बातचीत सुनकर अजना देवी के भाव जान लीजिए। उसके बाद वह आपको अपनाने योग्य जान पड़े तो अपना लेना, अन्यथा न अपनाना। पर आप स्वयं परीक्षा कर लें, यह अच्छा होगा। परीक्षा और विश्वास के बाद जो प्रेम किया जाता है, वही प्रेम स्थायी होता है।

पवनकुमार को प्रहस्त की बात उचित जान पड़ी। वह दरवाजे पर खड़े होकर अजना और वसंतमाला की बातचीत सुनने लगे।

वसंतमाला अंजना से कह रही थी—सखी, राजकुमार ने तुम्हारा कैसा घोर अपमान किया है? उनसे अब और क्या आशा की जा सकती है?

अजना ने कहा—सखी, मुझे पति के काम की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। वरन् धर्म का पालन करने का ही ध्यान रखना चाहिए। मेरे गुरु ने धर्म का स्वरूप मुझे इस प्रकार सिखलाया है:—

नो इह लोगट्टयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो परलोगट्टयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो कित्तीवण्णसद्दसिलोगट्टयाए तवमहिट्ठिज्जा, नन्नत्थ निज्जरट्ठायाए तवमहिट्ठिज्जा।

अर्थात्—इस लोक, परलोक संबंधी लाभ की इच्छा से

अथवा कीर्त्ति आदि की आशा से तप नहीं करना चाहिए। निष्काम भाव से केवल निर्जरा के लिए ही तपश्चरण करना चाहिए। गुरुदेव का यह आदेश है। इस आदेश के अनुसार ही मुझे निष्काम भाव से धर्म का पालन करना है।

वसंतमाला ने पूछा—सखी, धर्म का कैसे पालन करोगी?

अंजना ने कहा—

सत्यव्रत धार मन मोह तें निवार कर,
गिरि की गुहा में तन तप में तपावेंगे।
दया दिल लावेंगे जीव न सतावेंगे,
रीत न दबावेंगे न काया कलपावेंगे।
माणिक की जोति इस जोति में जुटावेंगे
और आनन्द बढावेंगे अनन्त सुख पावेंगे।
दुनिया में फेरि कभी आवेंगे न जावेंगे
कर्म को खपावेंगे अमर पद पावेंगे।

यह एक कवि की कविता है। इस कविता में जो कल्पना की गई है, मानों वह अंजना के भावों को ही व्यक्त कर रही है।

अंजना वसंतमाला से कहती है—सखी, मेरे गुरु ने बतलाया है कि आत्मा को शुद्ध रखने से दुःख भी सुख के रूप में परिणत हो जाता है और फिर किसी भी प्रकार का कष्ट शेष नहीं रहता। इसलिए मैं गुरु की आज्ञा के अनुसार आत्मा को शुद्ध करने का प्रयत्न करूँगी। आत्मा को शुद्ध करने के लिए मैं सब से पहिले सत्यव्रत को अंगीकार करूंगी।

मेरे लिए तो पतिव्रत धर्म को स्वीकार करना ही सत्यव्रत को स्वीकार करने के बराबर है।

पुरुष चाहते है कि स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करें, परन्तु उन्हें क्या पत्नीव्रत का पालन नहीं करना चाहिए? पतिव्रत पत्नी के लिए और पत्नीव्रत पति के लिए कल्याणकारी है। पतिव्रत का माहात्म्य कितना और कैसा है, यह बतलाने के लिए अनेक उदाहरण मौजूद है। पतिव्रत के प्रभाव से सीता के लिए अग्नि भी ठंडी हो गई थी। सीता ने पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिए कितने अधिक कष्ट सहन किये थे? वह चाहती तो राम और कौशल्या का आग्रह मानकर घर में बैठी रह सकती थी और कष्टों से बच सकती थी। मगर पतिव्रत धर्म का पालन करने के लिए उसने कष्ट सहना ही स्वीकार किया। इसी प्रकार पुरुषों को भी स्त्रियों के सुख-दुख में भागीदार बनना चाहिए और स्त्रियों की ही तरह एक पत्नीव्रत का पालन करना चाहिए। स्त्रियों के लिए जैसे पतिव्रत धर्म है उसी प्रकार पुरुषों के लिए पत्नीव्रत भी धर्म है।

अञ्जना ने वसंतमाला से कहा—पति ने मेरा अपमान किया है, इसलिए मुझे अपने मन में दुर्भाव लाना चाहिए, यह उचित नहीं है। अपमान का बदला अपमान से नहीं किन्तु प्रेम से लेना चाहिए। दूसरे के हृदय को जीतने का यही सरल मार्ग है। मै अपमान का बदला प्रेम से ही लूँगी।

प्रेम ही किसी के हृदय पर विजय प्राप्त करने का सबल साधन है। मैं मोह-वासना को जीतकर जंगल में, पर्वत की गुफा में जाकर अहिंसापूर्वक तप का आचरण करूँगी और इस तरीके से कर्मों का नाश करूँगी। पतिदेव ने रुष्ट होकर मुझे अपने जीवन का सुधार करने का अवकाश दिया है। उन्होंने सच-मुच मेरा उपकार किया है।

अञ्जना का यह सब कथन सुनकर पवनकुमार बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे-अञ्जना की भावना कितनी विशुद्ध और दृढ़ है!

प्रहस्त ने हास्य के साथ कहा-अब तो विश्वास हो गया!

फिर प्रहस्त ने आवाज़ देकर कहा—द्वार खोलिए!

पुरुष की आवाज सुनकर अञ्जना कहने लगी—कौन है यह दुष्ट जो रात्रि के समय यहाँ आया है और द्वार खोलने के लिए कहता है? जान पड़ता है, राजकुमार की अनुपस्थिति में, हमें असहाय समझ कर कोई आया है! लेकिन न हम असहाय हैं और न अबला ही। सुबह होते ही श्वसुर से कहकर इसकी अक्ल ठिकाने लाऊँगी।

यद्यपि अञ्जना के शब्द कठोर और अप्रिय थे फिर भी पवनकुमार को वह बड़े ही प्रिय लगे।

प्रहस्त ने धीरे से कहा-आप जरा भी संदेह मत कीजिए। कोई पराये नहीं हैं। राजकुमार पवन के साथ मै उनका प्रहस्त हूँ।

अञ्जना बोली—आप ठीक कहते होंगे, पर खातिरी किये बिना द्वार नहीं खोल सकती। इतना कहकर अञ्जना ने एक छोटी-सी खिड़की से देखा तो पतिदेव उपस्थित थे।

इस प्रकार अञ्जना को खातिरी हो गई कि द्वार खटखटाने वाले पतिदेव और उनके मित्र प्रहस्त ही हैं तो उसने द्वार खोल दिया। पवनकुमार ने भीतर प्रवेश किया। अञ्जना ने उन्हें यथोचित नमन करके कहा—आज आपने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। मुझ जैसी अभागिनी और आप जैसा दयालु और कौन होगा? मै बड़ी अपराधिनी हूँ। मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

वास्तव में अञ्जना ने कोई भी अपराध नहीं किया था। अपराध तो पवनकुमार का ही था। फिर भी अजना अपना ही अपराध मान रही है और उसके लिए क्षमायाचना भी कर रही है! यह उन लोगों के लिए जीवित सबक है जो दूसरों का ही अपराध देखते हैं! वास्तव में दूसरे के बदले अगर अपना अपराध माना जाय तो किसी भी प्रकार का झगड़ा ही न रहे!

अजना अपराध मानकर पवनकुमार से क्षमा माँगने लगी। पवनकुमार अजना की यह नम्रता देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—अपराध तुम्हारा है या हमारा?

अजना—मेरी माता ने मुझे अपना ही अपराध मानने की शिक्षा दी है। उन्होंने पतिदेव की सेवा का यही मंत्र मुझे

सिखलाया है।

आजकल के लोग दूसरे को वश मे रखने को मंत्र-तंत्र सीखने के लिए तैयार रहते है। वे स्वयं दूसरे के वश में होकर उसको अपने वश में करने का मंत्र नहीं सीखते। अगर हम दूसरे को वश में करना चाहते हैं तो सरल उपाय यही है कि हम स्वयं दूसरे के वश में रहना सीखें।

अजना कहती है—मेरी माता ने पति को वश में करने की दूसरी शिक्षा इस प्रकार दी है—

सानुकूल्यस्य सकल्प. प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वं वरणं तथा ॥
आत्मनिक्षेप कार्पण्यं षड्विधा शरणागताः ॥

आशय यह है—अगर तू पति के शरण में रहना चाहती है और पति को अपने अधीन रखना चाहती है तो तुझे जीवन में छह बातों का अमल करना चाहिए। सर्वप्रथम, पति को जो अनुकूल हो वह करने का संकल्प करना और जो प्रतिकूल हो उसको त्याग देना। पति को आत्मसमर्पण करना, पति की रक्षा करना, पति की गोपनीय बात को गुप्त रखना, और पति के समक्ष दीनता रखना। इन छह बातों पर अमल करने से पति को ही नहीं, परमात्मा को भी वश में किया जा सकता है। यह बात मेरी माता ने मुझे सिखाई है।

परमेश्वर को किस प्रकार वश में किया जाय और किस प्रकार परमेश्वर की शरण में रहना चाहिए, इस संबंध में

भक्त जन पतिव्रता स्त्री का ही उदाहरण दिया करते हैं। इस लिए स्त्रियों को इन उपायों द्वारा अपने पति के शरण में जाना चाहिए अथवा पति को अपने अधीन बनाना चहिए। विवाह के समय वर और वधू एक संकल्प करते हैं, जिसके अनुसार वर के लिए शेष समस्त स्त्रियाँ माता और वहिन के समान है तथा वधू के लिए शेष पुरुष पिता और भाई के समान हैं। इस प्रकार का संकल्प आजकल भी किया जाता है पर उसका पालन बराबर नहीं होता दीखता। आज तो पवित्र संकल्प करना एक रूढ़ि हो गई है।

अजना कहती है—जब आप मुझे दर्शन नही देते थे तब भी मै यही सोचती थी कि जैसे मैंने संकल्प किया है उसी प्रकार आपने भी संकल्प किया है। विवाह के समय किए हुए पवित्र संकल्प का भलीभाँति पालन करना पति और पत्नी दोनों का कर्त्तव्य है। मेरा यह साधारण कर्त्तव्य है कि जो आपको अनुकूल हो वही करूँ और जो प्रतिकूल हो वह काम न करूँ। अगर आपने मायके जाने के लिए कहा होता तो मै वहाँ जा सकती थी। मगर जब आपने इस विषय में कुछ भी नहीं कहा तो मै कैसे जाती? जिस खिड़की के द्वारा मै आपका दर्शन करती थी, वह भी आपने जब बंद करवा दी तो मैंने यही सोचा कि पतिदेव मेरे हृदय में ही विराजते हैं तो फिर दर्शन करने की आवश्यकता ही क्या है? आपने जो किया, ठीक ही किया है। मेरे विचार

मैं तो वही सच्चा पति है जो पावन अर्थात् पवित्र बनाता है। मुझे विश्वास है कि आप ही मेरी रक्षा करेंगे। भले ही आप मेरे शरीर का तिरस्कार करें मगर मेरे धर्म की रक्षा तो आप करेंगे ही, यह मुझे विश्वास है। इसी विश्वास के बल पर मैं आज तक जीवित रही हूँ और इसी विश्वास के प्रभाव से मुझे आपका दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हो सका है।'

अजना ने संकट के समय धर्म की रक्षा की तो आखिर उसकी भी रक्षा हुई। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। कहा है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

अर्थात्—जो धर्म का नाश करता है, धर्म उसका नाश करता है और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

इस प्रकार विश्वास रखकर धर्म का पालन करने से अवश्य ही कल्याण होता है। धर्म कल्याण-मन्दिर की पहली सीढ़ी है।

अञ्जना ने फिर कहा—मेरी माता ने मुझे नम्र रहने का भी मन्त्र सिखलाया है। दूसरे के हृदय को जीतने की चावी नम्रता है। स्त्री का धर्म है कि वह पति के सामने नम्र रहे और पर पुरुष के सामने कठोर। आप प्रत्यक्ष ही देख चुके हैं कि मैं आपके सामने कितनी नम्र और दूसरे के समक्ष

कितनी कठोर हूँ।

अञ्जना की माता ने पति को वश में करने और पति के शरण में जाने के जो उपाय बतलाये हैं, परमात्मा को वश में करने और परमात्मा के शरण में जाने के भी वही उपाय हैं। अगर तुम परमात्मा के शरण में जाना चाहते हो तो इन उपायों पर ध्यान दो और जो व्यवहार तुम्हें अपने लिए प्रिय नहीं है वह तुम दूसरों के साथ मत करो। तुम्हें अपने विषय में हिंसा, असत्य, चोरी आदि प्रिय नहीं लगते हैं तो दूसरों के प्रति भी इनका व्यवहार मत करो। इसके अतिरिक्त हमें जिसकी शरण में जाना है उसके प्रति विनम्र होकर रहना चाहिए किसी भी मनुष्य को न अधिक कठोर बन कर रहना चाहिए। और न अधिक विनम्र होकर ही, बल्कि बीकानेरी मिश्री के समान रहना चाहिए। बीकानेरी मिश्री अगर मुँह में रक्खी जाय तो गलकर सुन्दर मिठास देती है। अगर दूसरे को मारने के काम लाई जाय तो पत्थर की तरह सख्त आघात भी पहुँचाती है। इसी प्रकार धर्म के प्रति नम्रता और पाप के प्रति कठोरता रखने वाला ही धर्म का भलीभाँति पालन कर सकता है और पाप से बच सकता है। पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहते थे कि धर्म और धन-दोनों रहें तो बात दूसरी, अगर दोनों में से एक का त्याग करके दूसरे की रक्षा करना अनिवार्य हो जाय तो धन का बलिदान करके भी धर्म की रक्षा करना चाहिए। लेकिन लोग धन के लिए धर्म

को हार जाते हैं। नतीजा यह होता है कि धन भी चला जाता है और धर्म भी नहीं रहता।

अंजना की बातें सुनकर पवनकुमार उनकी प्रशंसा करता हुआ कहने लगा—प्रिये! तुम्हारी धर्मदृढ़ता सचमुच प्रशंसनीय और आदरणीय है। तुम्हारी जैसी धर्मदृढ़ता अगर परमात्मा के प्रति मेरी भी हो जाय तो मेरा भी कल्याण हो जाय और तुम्हारा भी कल्याण हो जाय। मैं अभी तक तुम्हें पहिचान ही न सका था। चकवी की प्रेरणा से आज मैंने तुम्हें पहिचाना है। आज मेरे लिए बड़े ही आनन्द का अवसर है।

इस प्रकार पति और पत्नी के बीच साधारण वार्त्तालाप हुआ। दोनों बड़े ही आनन्द के साथ परस्पर मिले और लम्बी रात तक एकान्त में रहे। जब थोड़ी रात शेष रह गई और भोर होने का समय आ पहुँचा, प्रहस्त ने पवनकुमार को आवाज़ देकर कहा-मित्र! चलो, प्रभात होना ही चाहता है। रात्रि थोड़ी रह गई है। हमें अपने ध्येय को भूल नहीं जाना चाहिए।

प्रहस्त का कथन सुनकर पवनकुमार जाने के लिए तैयार हो गया। तब अंजना हाथ जोड़कर कहने लगी-नाथ! आज के समागम के फलस्वरूप यदि मेरे पेट में गर्भ रह गया हो और संतान का जन्म हो तो वह संतान आपकी ही है, इस बात की साक्षी कौन देगा? इस विषय की साक्षी दिये बिना आप चले जाएँगे तो संभव है कि मुझे और आपकी संतान

को संकट में पड़ना पड़े। आपने यहाँ पधारने की कृपा की है तो कृपा करके कुछ साक्षी भी दे जाइए।

पवनकुमार—तुम्हारा कहना ठीक है। लेकिन मै अपने यहा आने की घटना को अगर प्रगट कर दूँगा तो भय है कि लोग मेरी निन्दा करेंगे। और यदि कोई साक्षी नही देता तो संभव है कि तुम्हें संकट में पड़ना पड़े। मेरी निन्दा भी न हो और तुम्हें संकट मे भी न पड़ना पड़े, इसके लिए मै अपनी अगूठी तुम्हें देता हूँ। आवश्यकता पड़ने पर साक्षी के रूप में इस अगूठी को काम में लाना'।





# कलंक का आरोप

——:: ():::——

भवितव्यता प्रबल होती है। इसी कारण अञ्जना ने पवन-कुमार का कथन मानकर अंगूठी ले ली। पवनकुमार अंगूठी देकर रातोंरात प्रहस्त के साथ विमान में बैठकर अपने पड़ाव पर आ पहुँचा।

अंजना गर्भवती हुई। उसे गर्भवती जानकर लोगों में कानाफूसी होने लगी कि राजकुमार ने तो अञ्जना का परित्याग कर दिया है, फिर वह गर्भवती कैसे हो गई ? राजकुमार युद्ध पर गये हैं। इसलिए अवश्य ही अंजना ने दुराचार का सेवन किया है। लोगों की कानाफूसी धीरे-धीरे अंजना की सास केतुमती के कानों तक पहुँच गई। पहले तो केतुमती ने कहा—मेरी बहू ऐसी है ही नहीं। वह बड़ी सुशीला है। लेकिन दूसरी स्त्रियों ने खातिरी के साथ कहा कि अंजना वास्तव में गर्भवती है। तब केतुमती बोली—मै अभी बहू को बुलाती हूँ और सारी बात पूछती हूँ।

केतुमती ने अंजना को बुलाने के लिए एक दासी भेजी। सासू का बुलावा पाकर पहले तो अंजना को प्रसन्नता हुई। उसने सोचा—मेरा सौभाग्य है कि सासूजी ने मुझे याद किया है पर दूसरे ही क्षण उसे नया विचार हो आया। सोचने लगी-सासूजी ने अचानक ही बुला भेजा है तो इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए। मगर अञ्जना विचारशील और धैर्यवती थी। उसने सोचा-जब मै सच्ची हूँ तो मुझे डर ही क्या है? साँच को क्या आँच? सासू के पास जाने में भय या संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार विचार कर अञ्जना धैर्य के साथ सासू के पास पहुँची। यथोचित प्रणाम करके वह नीचे बैठ गई। अञ्जना को देखते ही सासू केतुमती समझ गई कि अञ्जना गर्भवती है। केतुमती को क्रोध चढ़ आया। उसने क्रुद्ध स्वर में अञ्जना से कहा—बहू! तूने यह क्या काली करतूत कर डाली है? मेरा पुत्र तो तेरा मुँह भी नहीं देखता। फिर तू गर्भवती कैसे हो गई? तूने अपनी काली करतूत से मेरे कुल को कलंक लगा दिया है! अभी तक मै समझती थी कि तेरी जैसी सरल बहू का त्याग करके पवनकुमार ने भूल की है। मगर तेरे लक्षण अब जान पड़ते हैं।

अंजना समझ गई कि सासू को मेरे विषय में भ्रम उत्पन्न हो गया है। अञ्जना ने सासू का भ्रम मिटाने के लिए कहा—आप मुझे क्षमा कीजिए और मुझ पर विश्वास रखिए।

आपका क्रोध उचित नहीं है, क्योंकि मेरे पेट में जो गर्भ है वह किसी दूसरे का नहीं, आपके पुत्र का ही है। आपके पुत्र विद्या के बल से, रात के समय लौटकर आये थे। इस संबंध में मेरी यह दासी साक्षी है और उनकी दी हुई अँगूठी भी साक्षी है। इतने से भी अगर आपको संतोष न हो तो अपने पुत्र को आ जाने दीजिए। उनसे पूछकर अपना सन्देह निवारण कर लेना।

केतुमती ने कहा—यह तेरी ही दासी है और स्वाभाविक है कि वह तेरा ही पक्ष ले। रही अँगूठी, सो वह कहीं यों ही मिल सकती है। ऐसी अवस्था में प्रबल साक्षी के विना तेरे ऊपर भरोसा नहीं किया जा सकता। मुझे लगता है कि तूने दुराचार का सेवन किया है। नगर भर में इसी बात की चर्चा हो रही है। राजकुमार के लौटने तक ऐसी स्थिति में तुझे घर में कैसे रक्खा जा सकता है? कुल को कलंकित करने वाली स्त्री को घर मे रख कर और क्या अधिक कलंकित करना है?

इस प्रकार केतुमती अञ्जना पर अत्यन्त कुपित हुई। अञ्जना समझ गई कि इस समय सासू के संदेह को मिटाना मेरे वश की बात नहीं है। इसलिए अब कुछ अधिक कहना वृथा है।

अञ्जना चुप हो रही। उसकी चुप्पी से केतुमती का संदेह और बढ़ गया। उसने समझा—गर्भ मेरे पुत्र का नहीं है।

अञ्जना झूठ बोलकर अपना पाप छिपा रही है। आखिर उसने अञ्जना को घर से बाहर निकल जाने का आदेश दे दिया। इसके बाद वह उठी और राजा प्रह्लाद के पास पहुँची। स्त्रियों के बहकावे में आकर पुरुष आवेश में आ जाते हैं और कैसे-कैसे अन्याय कर बैठते हैं, इसके अनेक उदाहरण इतिहास के पन्नों पर आज भी मौजूद है।

कुतुमती ने राजा प्रह्लाद को अञ्जना सम्बन्धी सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा—बहू ने निष्कलंक कुल को कलंकित कर डाला है। ऐसी कुलटा बहू को घर में रखने से कुल को अधिक कालिमा लगेगी और दुराचार का प्रचार होगा। इसलिए उसे घर से निकाल बाहर कर देना ही उचित है।

केतुमती ने इस प्रकार प्रह्लाद के कान भर दिये। राजा प्रह्लाद के लिए उचित तो यह था कि वह निष्पक्ष होकर सत्य-असत्य का निर्णय करता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया।

प्रह्लाद बोला—ऐसा है तो अब क्या करना चाहिए?

केतुमती—इस समय एक ही उपाय है कि अञ्जना को घर से निकाल कर उसे मायके भेज दिया जाय। किसी होशियार आदमी के साथ उसे भेजना होगा ताकि वह ऐसी जगह उसे छोड़ आवे कि अञ्जना अकेली अपने मायके पहुँच सके। ऐसा करने से अपना कुल कलङ्क से बच जाएगा और प्रजा में दुराचार भी नहीं फैलेगा।

---

## ६

# निर्वासन

——::::():::: ——

राजा प्रह्लाद ने केतुमती की बात स्वीकार कर ली। उसने एक विश्वासपात्र और चतुर आदमी को बुलाया। सब कुछ समझा कर उससे कहा—अञ्जना को रथ में बिठला कर कहीं ऐसी जगह छोड़ आओ कि वह स्वयं अपने पिता के घर तक पहुँच जाय।

अञ्जना के गर्भ के सम्बन्ध में प्रह्लाद जैसे न्यायी राजा ने भी सत्यासत्य का निर्णय नहीं किया। इसका कारण यही अनुमान किया जा सकता है कि अञ्जना के कुछ पाप कर्म शेष रह गये होंगे। कैसे कर्म उपार्जन किये गये हैं और वे कर्म किस प्रकार उदय में आकर कैसा फल देते हैं, यह बात स्पष्ट रूप से केवलज्ञान के बिना नहीं जानी जा सकती। हम लोगों को केवलज्ञान तो है नहीं, इस कारण केवलज्ञानी जो कह गये हैं उसी पर हमें विश्वास रखना चाहिए।

राजा प्रह्लाद का भेजा आदमी अंजना के पास आया।

उसने अंजना से कहा—बैठिए, रथ तैयार है। रानीजी ने आपको बाहर घूमने के लिए रथ भेजा है। अंजना समझ गई कि मुझे कहाँ जाना है! उसने वसन्तमाला को बुलाकर कहा—मेरे विषय में भ्रम पैदा हो गया है, उसी का यह दुष्परिणाम है।

वसन्तमाला ने कहा—सखी, यह तो भारी अनर्थ होरहा है! आपकी आज्ञा हो तो मै महारानी और महाराज के पास जाकर उनके संदेह को दूर करने का प्रयत्न करूँ।

अंजना—इस समय कोई भी प्रयत्न सफल होने की उम्मीद नहीं है। इस मौके पर मुझे सासू-ससुर की आज्ञा का पालन करना ही उचित जान पड़ता है।

संकट के समय ज्ञान का उपयोग किया जाय तो ही ज्ञान की सार्थकता है। अगर संकट के समय विवेक न रहा तो ज्ञान किस काम का? विवेकहीन ज्ञान से कार्य की सिद्धि नहीं होती। ज्ञान को सफल एवं सक्रिय बनाने के लिए विवेक की बड़ी आवश्यकता है। यहाँ यह देखना है कि सती अञ्जना सङ्कट के समय भी विवेक का उपयोग करके कैसी सहन-शीलता दिखलाती है?

वसंतमाला को यह सब सहन न हो सका। वह अञ्जना के दुःख से दुःखी होकर रोने लगी। अञ्जना ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा—सखी, तू रोती क्यों है? दुःख मेरे ऊपर आया है। फिर भी मै तो रोती नहीं और तू रो रही है। क्या

यह उचित कहा जा सकता है ?

वसन्तमाला—मुझे रत्ती-रत्ती सच्ची बात मालूम है। तुम सर्वथा निर्दोष और पवित्र हो। फिर भी तुम्हारे माथे कलंक चढ़ाया जारहा है। बस, इसी कारण मुझे रोना आ रहा है।

अञ्जना—कर्म की गति विचित्र है। होनहार हो कर ही रहता है। फिर भी अन्त में सत्य छिपा नहीं रहता। वह एक न एक दिन सूर्य की तरह चमक उठता है। सत्य का पालन करने में संकटों का सामना करना ही पड़ता है। जिस रात्रि में राजकुमार पधारे थे तब तू प्रसन्न हुई थी। फिर आज दुखी क्यों हो रही है? प्रत्येक स्थिति में सम-भाव रखने का अभ्यास करना चाहिए। सुखों में फूलना नहीं और दुख में घबराना नहीं चाहिए। सखी, तू मेरे लिए तनिक भी चिन्ता मत कर।

वसंतमाला के साथ अंजना ऐसे सरल भाव से रथ में बैठ गई जैसे मायके से कोई लिवाने आया हो और कुछ दिनों के लिए वहाँ जा रही हो। उस समय भी वसंतमाला के चेहरे पर दुख के चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे, मगर अंजना सती अत्यन्त गंभीर और शांत थी। उसके चेहरे पर घबराहट या वेदना का कोई निशान नहीं था।

शरीर में आसुरी और दैवी बल के बीच सदैव युद्ध रहता है। इस युद्ध में अगर दैवी प्रकृति की जीत होगी

है तो वही सच्ची विजय है। कदाचित् दैवी प्रकृति दब जाय और आसुरी प्रकृति प्रकट हो जाय तो उस दशा में आत्म-हानि ही होती है।

अजना ने कष्ट सहन करना कबूल किया, पर दैवी प्रकृति का परित्याग करके आसुरी प्रकृति की शरण में जाना स्वीकार नहीं किया। साधारण मानवी के हृदय में ऐसे संकट के समय भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मगर अजना ने अपने हृदय में संकल्प विकल्प को जरा भी स्थान नहीं दिया। वह यही सोचती थी कि मुझे जो दुःख भोगना पड़ रहा है वह सब मेरा ही पैदा किया हुआ है। शास्त्रकारों का कथन है कि किए हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं। ऐसी दशा में अगर मुझे अपने किये कर्मों के फलस्वरूप दुख भोगना पड़ रहा है तो इसमें दूसरे का क्या दोष है ?

अपने ही कर्म भोगने पड़ते हैं, यह जैनधर्म का मौलिक सिद्धान्त है। सुख या दुख, जो भी भोगा जाता है, वह सब अपने ही कर्मों का फल है। गीता मे भी कहा है—न पर-मात्मा किसी से कर्म कराता है और न कर्मों का फल ही देता है। प्रश्न किया जा सकता है कि अगर परमात्मा कर्म का फल नहीं देता तो कौन देता है ? इसका उत्तर यह है कि जैसे शक्कर में से मिठास और मिर्च में से तीखापन स्वभाव से ही निकलता है, उसी प्रकार कर्म का फल भी कर्म

के स्वभाव से ही मिलता है। इस कथन के अनुसार कर्म का कर्त्ता भी आत्मा है और भोक्ता भी आत्मा ही है। सिद्धान्त की इस बात पर दृढ़ आस्था रखने से आत्मा को शांति ही मिलती है। जो व्यक्ति कर्म के इस सिद्धन्त पर सुदृढ़ श्रद्धा रखता है उसे प्रत्येक परिस्थिति में, चाहे वह कैसी भी प्रतिकूल क्यों न हो, दुख का अनुभव नहीं होता।

चलते-चलते रथ निर्जन वन में जा पहुँचा। अजना ने सारथी से कहा—मेरे साथ-साथ तुम कहाँ तक कष्ट उठाते रहोगे? साफ-साफ कह दो कि तुम क्या करना चाहते हो?

सारथी ने राजा प्रह्लाद की आज्ञा बतलाते हुए कहा—मै आपको महेन्द्रपुर के मार्ग पर छोड़ देना चाहता हूँ।

अंजना—महेन्द्रपुर यहाँ से पास ही है और इधर का रास्ता मुझे मालूम है। अब तुम अधिक कष्ट न उठाओ।

सारथी ने दुखपूर्ण हृदय से, हाथ जोड़कर कहा—'मैं विवश हूँ देवी! कर्त्तव्य के वश होकर मुझे यह घोर कृत्य करना पड़ता है। मै ऐसा करते हुए अत्यन्त दुखी हूँ।' इतना कहकर सारथी रोने लगा।

अजना ने सान्त्वना देते हुए कहा—तुम रोते क्यों हो? आखिर तो मेरे दुख से ही रो रहे हो न? लेकिन जब मै स्वयं दुख नहीं मना रही हूँ तब तुम क्यों दुखी होते हो? मने आज्ञा का पालन किया है; इसलिए तुम्हें प्रसन्न होना हिए और महाराज से कहना चाहिए कि मैंने आपकी आज्ञा

का बराबर पालन किया है।

इस प्रकार धीरज बँधाकर अंजना ने उस आदमी को रवाना कर दिया। अंजना ने वसंतमाला से कहा—तू मेरे साथ क्यों वृथा कष्ट सहती है ? तेरी इच्छा हो तो लौट जा।

वसंतमाला बोली—आज तक मै तुम्हारे साथ रही हूँ। अब कष्ट के समय तुम्हें कैसे छोड़ सकती हूँ ?

पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज ने व्याख्यान देते हुए कहा था—एक बार वन में दावानल लगने के कारण एक वृक्ष जलने लगा। उस वृक्ष पर एक पक्षी ने घोंसला बना रक्खा था। वृक्ष जब जलने लगा तो उसने पक्षी से कहा—मेरे पंख नहीं हैं, इस कारण मुझे जलना पड़ रहा है। पर तुम्हारे तो पंख हैं। तुम मेरे साथ क्यों जल रहे हो ?

> दव लाग्यो तरुवर जले पंखी माला माय।
> हुँ तो जलूं रे पाख विन तू क्यों नांहि उड जाय॥
> पान विगाड्या फल चख्या रम्यो तो हडी डाल।
> तू तो जले मुझ देखतां म्हारे जीवणो कितने काल॥

अर्थात्–वृक्ष के पूर्वोक्त कथन के उत्तर में पक्षी कहने लगा–मैंने तुम्हारे पत्ते विगाड़े हैं, तुम्हारे मीठे फल चखे हैं और तुम्हारी डालियों पर कूदफांद की है। आज तुम मेरे देखते-देखते जल रहे हो। मुझे कितने दिन जीना है जो ऐसी परिस्थिति में तुम्हें छोड़कर मै उड़ जाऊँ ? मै तुम्हें छोड़कर चला जाऊं तो मेरे जीवन को धिक्कार है ! इसलिए भाई !

तुम्हारी गति सो मेरी गति !

इसी प्रकार वसंतमाला ने भी अजना से कहा—अब तक मैं तुम्हारे साथ रही। खूब खाया, पीया और आनन्द किया। अब ऐसे संकट के समय तुम्हें अकेली छोड़कर मैं कैसे जा सकती हूँ ? नहीं सखी, यह मुझसे नहीं होगा।

अंजना समझ गई कि वसन्तमाला मुझे किसी भी प्रकार छोड़ेगी नहीं। इसके हृदय में मेरे प्रति स्नेह है। यह मेरे साथ आना चाहती है तो भले आवे।

रात हुई। दोनों ने जंगल में रात व्यतीत की। अंजना रात भर भगवान् का स्मरण करती और उपकार मानती रही।

प्रातःकाल होने पर वसन्तमाला ने कहा—सखी, महेन्द्रपुर जाने का मार्ग यह है। चलो, इस मार्ग से महेन्द्रपुर चलें। पिताजी तो वहाँ आश्रय देंगे ही।

अजना—सखी ! तुम माता-पिता के घर आश्रय मिलने की आशा करती हो पर मुझे ऐसी आशा नहीं है। मैं श्वसुर के घर से निकाली गई हूँ। ऐसी दशा में माता-पिता के घर भी आश्रय नहीं मिलेगा।

वसंतमाला-तुम्हारा कथन किसी दृष्टि से ठीक है, फिर भी मुझे विश्वास है कि पिताजी अवश्य आश्रय देंगे।



# १०

# मायके के द्वार पर

——.:::():::.——

अंजना के माथे कलंक का जो टीका था वह मानो विपत्ति का पहाड़ था। प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपकीर्त्ति मृत्यु से कम नहीं है। बल्कि उन्हें अपकीर्त्ति मृत्यु से भी बढ़कर दुःखदायिनी होती है। यही कारण है कि कई लोग अपकीर्त्ति की वेदना से बचने के लिए आत्महत्या तक कर डालते हैं। यद्यपि यह मार्ग ग्रहण करने योग्य नहीं है, फिर भी इससे इतना पता तो चलता ही है कि जो लोग अपकीर्त्ति से बचने के लिए मौत का आश्रय लेते हैं वे मौत की अपेक्षा अपकीर्त्ति के दुःख को अधिक समझते हैं।

अंजना की भी अपकीर्त्ति हुई थी। अपकीर्त्ति के कारण उस पर दुःख का पहाड़ आ पड़ा था। फिर भी उसे घबराहट नहीं हुई, क्योंकि उसे अपनी आत्मा पर भरोसा था। अपने को कलंकित करने के लिए उसने किसी को दोषी नहीं ठहराया। वह केवल यही सोचती थी कि यह सारा अपराध मेरी आत्मा का

ही है। जब आत्मा अपने अपराध का फल भोग लेगी तो स्पष्ट प्रकट हो जाएगा कि मैं सच्ची पतिव्रता थी। इस समय तो मुझे अपने को शान्त और दान्त ही रखना है। इसी में मेरा कल्याण है।

अंजना के कष्ट देखकर वसंतमाला घबरा उठी थी। अंजना ने उसे धीरज बंधाते हुए कहा—सखी, मैंने जो पहले कर्म किये हैं, उनका फल मुझे भोगना ही पड़ेगा। कर्म को भोगते समय दुःख मनाना व्यर्थ है। मैं पाप से डरती हूँ, पाप के फल से नहीं।

आखिर वसंतमाला के कहने से अंजना महेन्द्रपुर नगर के दरवाजे पर पहुँची। उसने द्वारपाल को अपना परिचय देकर कहा—'पिताजी के पास जाकर उन्हें मेरे आने की खबर दे दो।'

द्वारपाल अंजना को पहिचानकर कहने लगा—आप राजकुमारी होकर ऐसी हालत में कैसे पधारी हैं?

अंजना ने स्पष्टीकरण किया—मेरे ऊपर संकट आ पड़ा है। मुझ पर परपुरुष द्वारा गर्भ धारण करने का आरोप लगाया गया है। सास-ससुर ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया है।

अंजना ने सारा वृतान्त सुना दिया।

द्वारपाल ने राजा से जाकर कहा—महाराज! राजकुमारी ई हैं।

राजा ने प्रसन्न होकर कहा—अंजना का आना प्रसन्नता

की बात है। जल्दी जाओ, नगर को सजाने की आज्ञा देदो और अजना को आदर के साथ लिवा लाओ।

द्वारपाल—महाराज ! आपका आदेश प्रमाण है; परन्तु राजकुमारी ऐसी स्थिति में नहीं आई हैं कि उन्हें इस प्रकार आदर के साथ नगर में लाया जाय। इस समय वह सुन्दर स्वागत के योग्य नहीं हैं।

इतना कह कर द्वारपाल ने अञ्जना का कहा हुआ सब वृत्तान्त राजा को सुनाया। वृत्तान्त सुन कर राजा महेन्द्र के दुःख का पार न रहा। उन्होंने व्यथित हृदय से मन ही मन विचार किया—वास्तव में मेरे दामाद अञ्जना से रुष्ट थे। इस रोष के कारण मेरे द्वारा प्रेम और उत्साह के साथ भेजी हुई भेंट भी उन्होंने स्वीकार नहीं की थी। ऐसी अवस्था में अञ्जना अनाचार का आश्रय लेकर गर्भवती हो, यह निस्संदेह कलङ्क की बात है। मेरी पुत्री होकर भी उसने शील और ब्रह्मचर्य की मर्यादा खण्डित कर दी ! फिर कुकर्म करके वह यहाँ आई है ! कलंकित पुत्री को मैं आश्रय नहीं दे सकता।

राजा ने द्वारपाल से कहा—दुःख के साथ अञ्जना से कह देना कि कलंकित दशा में मै उसे आश्रय नहीं दे सकता। वह जहाँ जाना चाहे, जा सकती है। मेरे राज्य की सीमा में उसे कहीं स्थान नहीं मिल सकता।

राजा का यह कठोर आदेश सुनकर उनके मन्त्री ने कहा—महाराज, आप आज्ञा देने में कुछ उतावल कर रहे

हैं। आज्ञा देने से पहले सत्य-असत्य का निर्णय कर लेना चाहिए। निर्णय करने से पहले इतना कठोर आदेश देना अनुचित प्रतीत होता है। मेरी विनम्र सम्मति यह है कि आप स्वयं अञ्जना के पास पधारें, सब वृत्तान्त विदित करें और फिर पवनकुमार से इस सम्बन्ध में पुछवा लें। इतना करने के बाद अगर अञ्जना अपराधिनी जान पड़े तो उचित कार्रवाई करें।

प्रधान का कथन उचित था। पर कर्म की लीला बड़ी विचित्र होती है। इस कारण राजा ने उसकी बात नहीं मानी। कहा—तुम्हारी बात ठीक है, फिर भी कलंकित पुत्री को इस समय स्थान देने से मेरा कुल कलंकित होगा और प्रजा पर इसका प्रभाव बुरा पड़ेगा। प्रजा को यह कहने का अवसर मिलेगा कि राजा दूसरों को सदाचार का उपदेश देता है, दुराचारी को दण्ड देता है, फिर भी अपनी लड़की को दुराचार करने पर भी घर में आश्रय देता है या अपने राज्य में रखता है। प्रजा की इतनी टीका भी मै नहीं सुनना चाहता। अतएव मैंने जो कह दिया है वही मुझे ठीक जान पड़ता है।

राजा महेन्द्र फिर कहने लगे—अब अञ्जना मेरी है भी नहीं। वह अपने सास-ससुर की है। जब उसकी सास ने ही उसे निकाल दिया है तो मैं कैसे रख सकता हूँ?

मन्त्री—जान पड़ता है, अञ्जना की सास का स्वभाव है। ऐसा न होता तो उसने पवनकुमार के आने की राह

देखी होती। उसने पवनकुमार की राह न देख कर उतावली में अञ्जना को निकाल देने का अनुचित कार्य किया है तो क्या आपको भी यही करना उचित है ? मैं तो अब भी यही उचित समझता हूँ कि पवनकुमार के आने तक अञ्जना को अगर राजमहल में न रख सकते हों तो कहीं दूसरी जगह रख दीजिए। जब तक सत्य-असत्य का निर्णय नहीं हो जाता तब तक उसे सर्वथा आश्रयहीन करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

राजा—तुम क्षत्रियों की पद्धति नहीं जानते और इसी कारण ऐसा कह रहे हो। मैं अपनी पुत्री को भी स्थान नहीं दूँगा तो प्रजा यही कहेगी कि राजा को पुत्र या पुत्री प्रिय नहीं, धर्म प्रिय है। धर्म की रक्षा के लिए राजा अपने प्रिय जनों का भी त्याग कर सकता है। इस दृष्टि से मुझे तो यही उचित दिखाई देता है कि पुत्री अञ्जना को राज्य में स्थान न दिया जाय।

राजा महेन्द्र का निर्णय एक दृष्टि से क्रूरतापूर्ण होने पर भी दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो उचित भी प्रतीत होगा। राजा को अपनी पुत्री प्रिय तो थी ही फिर भी उसने उसे आश्रय नहीं दिया जिससे प्रजा में दुराचार सेवन करने की भावना उत्पन्न न हो। धर्म की रक्षा करने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। धर्म का पालन करने के लिए दृढ़ता की आवश्यकता होती है।

राजा का कथन सुनकर मंत्री ने विचार किया—अब

अधिक कहना वृथा है। तब निराशा और उदास भाव से उसनें द्वारपाल से कहा—तो तुम अजना के पास जाकर उनसे कह दो कि यहाँ तुम्हारे माता-पिता या भाई-बहिन वगैरह कोई नहीं हैं। तुम्हारे लिए सारा परिवार और राज्य वीरान है।

अजना के पास जाकर द्वारपाल ने सारा वृतान्त सुना दिया। राजा और राजमंत्री के बीच जो बातचीत हुई थी, वह भी उसने अंजना को सुना दी। द्वारपाल का निराशाजनक कथन सुनकर वसंतमाला रोती-रोती कहने लगी—सखी! अब हम कहाँ जाएँगी? सुसर के घर आश्रय न मिलने पर मायके का आश्रय लिया जाता है। जब मायके में ही आश्रय न मिले तो अन्यत्र कहाँ मिल सकता है?

वसंतमाला को तसल्ली देते हुए अञ्जना ने कहा—मैंने तुम्हारे कहने से आश्रय पाने के लिए यहाँ एक प्रयोग किया था। यह प्रयोग सफल नहीं हुआ। मुझे पहले ही आशा नहीं थी कि यहाँ आश्रय मिल सकेगा! पिताजी मुझे प्यार करते हैं, फिर भी उन्हें अपनी परिस्थिति का विचार तो करना ही पड़ेगा। परिस्थिति के कारण ही उन्होंने ऐसा कहलाया है। तू चाहे तो पिता के घर रह सकती है। तुझे अवश्य आश्रय मिल जायगा। रही मेरी बात, सो जहाँ मेरी अन्तरात्मा ले जाएगी, वहीं मै चली जाऊँगी।

वसंतमाला—आखिर तुम्हारी अन्तरआत्मा कहाँ जाना चाहती है?

अञ्जना—सभी ने मेरा तिरस्कार किया है, पर जंगल ऐसा नहीं करेगा। मै किसी जंगल का ही आश्रय लूँगी।

---

११

# वनवास

——::::()::::——

वन में रहने का महत्त्व कितना है, यह बतलाने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अनेक लोग राजपाट तज-कर वन में जाना पसंद करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसी शांति वन में प्राप्त हो सकती है, वैसी कहीं भी दूसरी जगह संभव नहीं है। जंगल में मंगल की भावना रखने से किसी भी प्रकार का दुख नहीं जान पड़ता। आज तो जंगल में भी परतंत्रता का प्रवेश हो गया है और गाय जैसे मनुष्योपयोगी प्राणियों को भी वहाँ घास चरने की छूट नहीं मिलती; पर प्राचीन काल में जंगल सब के लिए खुला था। वहाँ किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। जो लोग स्व-तंत्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते थे वे जंगल के फल फूल खाकर अपना जीवन-निर्वाह कर लेते थे। लेकिन आज Forest tax ( जंगल का कर ) लगा दिया गया है और इस प्रकार जंगल की मंगलता में विघ्नबाधा उपस्थित कर दी गई है।

वसंतमाला ने चकित हो कर कहा—राजकुमारी, क्या तुम वन में रहने योग्य हो? क्या जंगली फल-फूलों पर तुम निर्वाह कर सकोगी? क्या जंगल में जमीन पर सो सकोगी? जंगल के अपार कष्ट तुमसे कैसे भोगे जाएँगे?

अञ्जना ने गहरा विचार करके कहा—मैं यह सब कष्ट सहने के लिए तैयार रहूँगी। इसके अतिरिक्त जंगल में न जाऊँ तो जाऊँ कहाँ?

वसंतमाला—चलो न, हम स्वयं पिताजी के पास चलें। एक बार संपूर्ण वृत्तान्त सुनाकर आश्रय देने की प्रार्थना करें।

अजना-सखी, मुझसे यह न होगा। जब पिताजी ने एक बार उत्तर दे दिया है कि मै उनके राज्य की सीमा में न रहूँ राज्य में रहने देने की प्रार्थना कैसे कर सकती हूँ? कहा भी है—

> आव नहीं आदर नहीं, नहि नैनन में नेह,
> तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसै मेह।
> आव जहाँ आदर जहाँ, जहँ नैनन में नेह,
> तुलसी तहाँ तो जाइए, पत्थर बरसै मेह॥

पिताजी ने मेरा आदर नहीं किया; इतना ही नहीं वरन् राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने की आज्ञा दी है तो इस स्थिति में मै आश्रय देने के लिए प्रार्थना नहीं कर सकती। मै जंगल के कष्ट खुशी-खुशी सह लूंगी पर पिताजी के पास ना करने नहीं जाऊँगी। सखी, तू जाना चाहती हो तो शी से चली जा। मैं आग्रहपूर्वक कहती हूँ कि तुझे मेरे

साथ रहकर कष्ट भोगने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो अब जंगल में ही रहूँगी। मैं सर्वथा निष्कलंक हूँ, फिर भी सुसराल में और मायके में भी मुझे कलंक लगा है और मै आश्रय-हीन बना दी गई हूँ, मगर वन निराश्रितों का आश्रय है। वह समान रूप से सभी का स्वागत करता है। अतएव मैंने वन में रहने का ही निश्चय किया है। गर्भवती न होती तो मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में स्वतंत्र थी। गर्भ होने के कारण मैं विवश हूँ। गर्भ की रक्षा करना आवश्यक है। इसलिए दूसरा कोई विचार न करके वन में जाने का ही मैंने निश्चय कर लिया है।

गर्भ की रक्षा करना माता का आवश्यक कर्त्तव्य है। गर्भ की रक्षा करने के निमित्त माता को किस प्रकार की सावधानी रखनी चाहिए, यह बात ज्ञातासूत्र में बतलाई गई है। उसका सार थोड़े में यही है कि जिस प्रकार गर्भ की रक्षा हो, उसे शांति मिले, उसी प्रकार माता को वर्त्ताव करना चाहिए। आज कितनीक माताएँ गर्भवती होती हुई भी तपस्या करने बैठ जाती हैं। यह उचित नहीं है। जिन्हें तप ही करना है उन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, जिससे गर्भ ही न रहे। और जो ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकतीं उन्हें गर्भ रहने के बाद इस प्रकार वर्त्तना चाहिए जिससे गर्भ की हत्या होने की संभावना न रहे।

गर्भ की रक्षा करना अंजना ने अपना कर्त्तव्य समझा।

अंजना के कथन के उत्तर में वसंतमाला ने कहा—सखी, जैसा उचित समझो, करो। मै तुम्हारे साथ ही हूँ। तुम्हें छोड़कर कहाँ जा सकती हूँ?

अजना ने सोचा—यह मुझे त्याग कर अपने पिता के घर नहीं जाएगी। तब वह बोली—वसंतमाला! अगर तुम मेरे साथ ही रहना चाहती हो तो खुशी से रहो। मै वन में रहकर आत्मा की ज्योति जगाऊँगी।

सारे महेन्द्रपुर नगर में बिजली के वेग से यह समाचार फैल गया कि राजकुमारी अञ्जना मायके आई थीं, लेकिन राजा ने उन्हें आज्ञा दी है कि वह मेरे राज्य में भी नहीं रह सकतीं। प्रजा में सदाचार के विरुद्ध कोई भावना न उत्पन्न होने पावे, इस विचार से राजा ने अपनी प्रिय पुत्री को भी घर में आश्रय नहीं दिया है। राजा के इस निर्णय को सुनकर लोग स्तंभित रह गये। सभी जानते थे कि अजना महाराज की लाड़ली बेटी है। फिर भी उन्होंने सत्य-असत्य का निर्णय नहीं किया और राजकुमार के आने तक भी अञ्जना को आश्रय नहीं दिया। समझदार प्रजाजनों ने इस संबंध में राजा से पुनः विचार करने की प्रार्थना करने का विचार किया। फिर उन्होंने सोचा—जब तक हम लोग महाराज के पास पहुँचेंगे तब तक अञ्जना न जाने कहाँ जा पहुँचेगी! अतएव [illegible] से पहले अञ्जना के पास जाना ही उचित होगा और [illegible] होने तक उसे यहाँ रोक लेना चाहिए।

नगर के प्रतिष्ठित प्रजाजन अंजना के पास पहुँचे। अजना की आकृति से ही उन्हें जान पड़ा कि वह निर्दोष है।

प्रजाजनों ने अञ्जना से कहा—आप कहाँ जा रही हैं?

अञ्जना—पिताजी ने जहाँ जाने का हुक्म दिया है वहीं जा रही हूँ।

प्रजाजन—महाराज ने जो आज्ञा दी है वह आपको दोषी समझ कर दी है। पर आप तो निर्दोष दिखाई देती हैं। अतएव आप कहीं न जाएँ, यहीं रहें।

अञ्जना—मेरे लिए पिताजी की आज्ञा मानना आवश्यक है। मैं अब इस राज्य की सीमा में कैसे रह सकती हूँ? मेरे लिए तो यही उचित है कि मै जल्दी से जल्दी राज्य की सीमा से बाहर चली जाऊँ।

प्रजाजन—आपका यह कोमल शरीर क्या वन में रहने योग्य है? आप वन में कैसे कष्ट सहन करोगी?

अजना—जिस शरीर को आप कोमल मान रहे हैं उसने अनेक कष्ट सहे हैं। सासरे में तो मुझ से कोई बोलता तक नहीं था। जब मै अनेक कष्ट भोग चुकी हूँ तो वन के कष्ट कौन-सी बड़ी बात हैं?

प्रजाजन—सासरे में भी आपको इतने कष्ट भोगने पड़े हैं यह बात तो हमें आज ही मालूम हुई। खैर, जो हुआ सो हुआ। अब आप यहीं रहिए। पवनकुमार आपको खोजते हुए जब यहाँ आएगे तब सच्चाई आप ही प्रकट हो जाएगी।

अञ्जना-मैं आपकी बात मानूँ या पिताजी की आज्ञा मानूँ? आप लोगों का मेरे प्रति स्नेह और सद्भाव है, उसकी मैं प्रशंसा करती हूँ; फिर भी यहाँ रहने में असमर्थ हूँ। मेरे यहाँ रहने से पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन भी होगा और राजा-प्रजा के बीच विग्रह भी होगा। मैं अपने स्वार्थ के लिए राजा और प्रजा के बीच विग्रह नहीं होना देना चाहती। मेरा यहाँ रहना धर्म से पतित होना है। अतएव मैंने वन में ही रहने का विचार कर लिया है। जब पति लौटेंगे और सत्य बात प्रकाश में आएगी तब देखा जाएगा।

प्रजाजन सोचने लगे—अंजना अपराधिनी होती तो उसके दृढ़ता भरे शब्द न निकलते। इससे भी अंजना की निर्दोषता सिद्ध होती है। इस संसार में परिषह निर्दोष आत्माओं को भी भोगने पड़ते हैं। इनके कार्य में हम लोगों को विघ्न नहीं डालना चाहिए।

प्रजाजन अंजना से क्षमा मांगकर लौट आये और अंजना तथा वसन्तमाला ने वन की ओर प्रस्थान किया। लौटने वाले प्रजाजनों में कोई कोई कहता था कि राजा ने सत्य असत्य का निर्णय किये बिना ही राजकुमारी को कष्ट दे डाला है! कोई कहता—राजा को अपनी पुत्री प्यारी तो होगी ही, फिर भी जब उन्होंने इतनी कठोर आज्ञा दी है तो वश्य ही अंजना ने कोई अपराध किया होगा! इस प्रकार नों तरह के लोग थे।

इस घटना पर से हमें सोचना है कि हम वास्तव में कैसे बनें ? शास्त्र में श्रावक के लिए, दूसरे व्रत में सहस-ब्भक्खाणे' नामक अतिचार बतलाते हुए कहा गया है कि श्रावकों को बिना जाने किसी पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। अगली-पिछली बात जाने बिना किसी को दोष लगा देने से 'सहसब्भक्खाणे' नामक अतिचार लगता है। हमें तो अपने सत्य व्रत का ही विचार करना चाहिए। सच्चे श्रावक तो साधुदर्शन, व्याख्यानश्रवण आदि धर्मकृत्यों के साथ अपने व्रतों का बराबर पालन करते हैं। सच्चे श्रमणोपासक साधुओं को अपना आदर्श मानकर आदर्श के अनुसार ही अपना व्यवहार बनाने की चेष्टा करते हैं।

अजना, वसंतमाला के साथ वन में पहुँची। वहाँ पहुँचने के बाद वसंतमाला ने कहा—अब हमें क्या करना चाहिए ?

अजना—सखी, हम यहीं-इसी वन में रहेंगी। यहाँ रहते क्या करना होगा, यह मैंने सोच रक्खा है। वन में हमें इस कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना हैः—

सखी ! हम आत्मस्वरूप ही ध्यावेंगी।
मात पिता भाई को दोष नहीं देवेंगी,
हम अपने स्वरूप में आपको विचारेंगी।
तत्त्व की गुफा में बैठ मोह की भ्रमणा मेट,
सत्यव्रत से तो प्रेम दया दिल लावेंगी।
जीव न सतावेंगी स्तेय हटावेंगी,

ब्रह्मचर्य व्रत धार ममता को मारेंगी।
प्रभु से तो प्रीति जोड़ जगत् से नाता तोड़,
आनन्द बढावेंगी परम सुख पावेंगी।
दुनिया दुरंगी जान इसमें न देवें ध्यान,
मन भ्रमणा को त्याग आत्मा को तारेंगी।

अञ्जना कहती है—वन में रहना उन्हें रुचिकर नहीं होता जिनके पास वन में रहने योग्य कार्यक्रम नहीं होता। हमारे पास तो वन के योग्य कार्यक्रम मौजूद है। संसार मेरा तिरस्कार करता है जब कि वन मेरा सत्कार करता है। दुनिया की मूर्खता देख-देख कर मुझे हँसी आती है। लोग मुझे कलंकित कहते हैं परन्तु वन ऐसा नहीं कहता। अतएव मैं वन में रहकर ही आत्मा का चिन्तन-मनन करूँगी। बड़ी कठिनाई से वन में रहने का यह अवसर मिला है। यह दुःख का समय भी मेरे लिए तो आनन्ददायक बन गया है। जो मनुष्य बात-बात में दुःख का अनुभव किया करता है उसका सारा ही जीवन दुःखमय बन जाता है। इसके विरुद्ध सुख मानने पर सुख ही मालूम होता है। वस्तुतः सुख और दुःख का कर्त्ता आत्मा ही है। आत्मा जब दुःख को सुख के रूप में ग्रहण करता है तो वह दुःख भी सुख के रूप में परिणत हो जाता है। जो लोग सुख-दुःख का कर्त्ता आत्मा के अतिरिक्त सी अन्य को मानते हैं वे भ्रम में हैं। मै भ्रम में नहीं हूँ। अतएव दुःख के समय भी आनन्द का अनुभव करती हूँ।

मेरी इच्छा यह भी है कि पदार्थों का पृथक्करण करते-करते मैं आत्मतत्त्व तक पहुँच जाऊँ। यह मेरी आत्मा का ही दोष है कि मै पति, सासू, सुसर और माता-पिता को भी अप्रिय लगी। अब इस वन में रहकर मै अपने उस दोष को दूर करने का प्रयत्न करूँगी। मै तत्त्व की गुफा में बैठकर मोह का भ्रम हटाऊंगी और आत्मतत्त्व का ध्यान करूँगी। माता-पिता आदि कुटुम्बी जनों ने मुझे आत्मचिन्तन करने का अच्छा अवसर प्रदान किया है। इसके लिए मै उनका उप-कार मानती हूँ। तत्त्व का विचार करके मै प्राणी मात्र पर दया करने का अभ्यास करूँगी और किसी भी जीव को नहीं सताऊँगी। सत्यव्रत का पालन करूँगी, क्योंकि अहिंसा और सत्य के द्वारा ही आत्मा का कल्याण हो सकता है। इसलिए इन दोनों व्रतों का पालन करने के साथ अस्तेयव्रत, ब्रह्मचर्य और संतोपव्रत का भी मुझे पालन करना है। इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और संतोप इन पाँच व्रतों द्वारा मैं अपनी आत्मा का कल्याण साधूँगी।

अञ्जना की बात सुनकर वसंतमाला बोली—इन व्रतों का पालन तो महेन्द्रपुर में रहने पर भी किया जा सकता था। फिर इसके लिए ऐसे घोर जंगल में आने की क्या आवश्य कता थी ?

अञ्जना—सखी, महेन्द्रपुर में रहने से पिता की आज्ञा का पालन न होता और संभव है कि राजा तथा प्रजा के बीच

झगड़ा खड़ा हो जाता। वन में रहने से यह कुछ भी नहीं होगा। बल्कि आत्मचिन्तन के लिए एकान्त मिलेगा और गर्भ की रक्षा भी हो ही जाएगी।

वसंतमाला को इस प्रकार समझाकर अजना ने वन में आगे प्रस्थान किया। भूख लगना शरीर का स्वाभाविक धर्म है। वसंतमाला ने अजना से कहा—अब हमने राज्य की सीमा पार कर ली है और इतना अधिक चलने से भूख लग आई है। अब क्षुधा शांत करना चाहिए।

अंजना—भूख लगी है तो वनदेवी ने भूख मिटाने की सामग्री भी अपने लिए तैयार कर रक्खी है।

इसके बाद वन के फल-फूलों से दोनों ने अपनी भूख मिटाई और ठंडा पानी पीकर आगे प्रस्थान किया।



# १७

# मुनिदर्शन

——::::()::::——

अजना और वसंतमाला धीरे-धीरे वन में आगे बढ़ी चली जा रही थीं कि एक वृक्ष के नीचे ध्यान में मग्न महात्मा दिखाई दिए। महात्मा के दर्शन करके अञ्जना बहुत प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी-इस वन में महात्मा पुरुष के दर्शन होना बड़े सौभाग्य की बात है। महात्मा पुरुष भी वन का ही आश्रय लेते हैं क्योंकि नगर में अनेक प्रकार की झंझटें लगी रहती हैं और वन में किसी भी प्रकार की झंझट नहीं होती।

अजना ने वसंतमाला से कहा—सखी, हम वन में न आतीं तो ऐसे तेजस्वी महात्मा के दर्शन कहाँ होते? अगर पिताजी ने कृपा न की होती तो हमें वन में आने का अवसर कैसे मिलता?

वसंतमाला—पिताजी ने आपको जङ्गल भेज कर बड़ा भारी अनुग्रह किया है! उनकी कृपा की कहाँ तक तारीफ

की जाय ! यों तो कहती नहीं कि पिता ने क्रूरता का परिचय दिया है ! अगर जङ्गल मे उन्होंने न भेजा होता तो खाने, पीने और रहने का यह कष्ट ही क्यों भोगना पड़ता ?

अजना—सखी, तू विना विचारे वोल रही है। तेरा कथन भूल से भरा है। पिता प्रसन्न होते तो नगर में खाने-पीने का सुभीता हो जाता, पर इस जङ्गल मे इन निष्परिग्रह महापुरुष से हमें क्या मिलना है ? तेरी यह मान्यता भ्रम-पूर्ण है। हमे जो कुछ मिल रहा है, यदि वह अच्छा है तो मानना चाहिए कि वह सव इन्हीं महात्मा के प्रताप से मिला है। जिस वस्तु को हम अच्छी समझें वह धर्म के प्रताप से ही मिलती है। धर्मतत्त्व को समझाने वाले और धर्म की ओर ले जाने वाले यह महात्मा ही हैं। इस लोक और पर-लोक सम्बंधी सुखों की चावी इन महात्माओं के हाथ मे ही है। इनकी सेवा करने से सव सुख सुलभ हो जाते हैं।

अञ्जना ने दूर से ही उन्हें वन्दन-नमस्कार किया और फिर धीमे स्वर में वसंतमाला से कहा—सौभाग्य से ही हमें इन मुनिराज के दर्शन हो सके है। देख तो, मुनि पद्मासन लगा कर, नासिका पर दृष्टि स्थिर करके तथा मन, वचन और काय को एकाग्र करके कैसे शान्तभाव से वैठे हैं ! यह मुनि महात्मा तो साक्षात् शांतिमूर्त्ति हैं ! यह शास्त्र में वर्णित क्षमा आदि दस धर्मों से युक्त जान पड़ते हैं। इनकी दयापूर्ण करुणा के सामने वैरभाव टिक ही नहीं सकता !

वकरी और सिंह सरीखे जन्म के विरोधी जन्तु भी ऐसे सरल शांतस्वभावी महात्मा के निकट वैरहीन वन जाएँ तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

इस प्रकार अपनी सद्भावना प्रकाशित करके अञ्जना और वसंतमाला-दोनों महात्मा के समीप पहुँचीं और चुपचाप नीचे वैठ गईं। थोड़ी देर के वाद महात्मा का ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होंने अञ्जना से कहा—तू राजा महेन्द्र की पुत्री वन में आई है ?

अञ्जना इस प्रश्न से चकित रह गई। उसने कहा—जी हाँ, महाराज ! मुझे आपके दर्शन करने का सुयोग्य मिलना था, इसीलिए यहाँ आने का निमित्त मिल गया। मेरे हृदय में आप से एक वात पूछने की इच्छा हो रही है। यद्यपि मै यह वात भली-भाँति जानती हूँ कि अपने किये कर्म ही मुझे भोगने पड़ रहे हैं, फिर भी मैं आपके मुख से यह सुनना चाहती हूँ कि मै ने ऐसा कौन सा दुष्कर्म पूर्वजन्म में किया है, जिसकी वदौलत मै सास-ससुर और माता-पिता को अप्रिय लगती हूँ और वहुत दिनों तक पति को अप्रिय लगती रही ? महाराज ! कृपा कर विस्तार के साथ मेरे प्रश्न का उत्तर देने की कृपा कीजिए। इससे मुझे और मेरी सखी को वहुत संतोष होगा।

दुःख को स्वकृत मानने से मन को संतोष मिलता है। हम वहुत वार कहा करते हैं कि—

इम समकित मन थिर करो, पालो निरतिचार,
मनुष्य-जन्म छे दोहलो, भमता जगत मझार।
विन कीधा लागे नहीं, कीधा कर्म जो होय,
कर्म कमाया आपणा, तेहथी सुख-दुख होय।

ज्ञानी जनों ने दुःख में भी मन को स्थिर रखने का उपाय बतलाया है कि चाहे सुख मिले, चाहे दुःख मिले, दोनों को अपने किये हुए कर्मों का ही फल समझो। ऐसा समझने से मन शान्त और स्थिर होगा। अञ्जना ने सुख और दुःख को अपने ही कर्मों का फल मानकर समभाव का अभ्यास किया था। यही कारण है कि उसका मन शान्त और स्थिर था।



# १३

# पूर्वभव का वृत्तान्त

——::.()::——

अजना के प्रश्न के उत्तर में मुनि कहने लगे—कर्म की लीला विचित्र है। जैसे छोटे से बीज में से विशाल वट-वृक्ष पैदा हो जाता है, उसी प्रकार कर्म की भी लीला है। मैं तुम्हारे कर्म के विषय में पूरी बात तो नहीं कहता, फिर भी कुछ बातें बतलाता हूँ, जिनके सुनने से तुम्हें कर्म की विचित्र लीला का पता चल सकेगा।

महात्मा ने अंजना की कर्मकथा कहते हुए बतलाया—'अञ्जना, तू पूर्वभव में एक राजा की रानी थी। तेरी एक सौत भी थी। सौत के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यद्यपि सौत के पुत्र को तुझे अपना ही पुत्र मानकर प्रसन्नता होनी चाहिए थी, परन्तु तेरे मन में यह ईर्षा उत्पन्न हुई कि सौत के पुत्र है और मेरे पुत्र क्यों नहीं है?'

ईर्षा करने का स्वभाव सिर्फ स्त्रियों में ही नहीं पाया जाता, पुरुषों में भी वह देखा जाता है। दूसरे की सुख-समृद्धि

कर पुरुष ईर्षा करता है। इतना ही नहीं, एक पुरुष को जो सुख प्राप्त होता है वही सुख यदि दूसरों को भी प्राप्त हो जाय तो ऐसी दशा में उसे वह सुख, सुख ही नहीं जान पड़ता। जो सुख दूसरों को प्राप्त न हो वही सुख मनुष्य को सुख मालूम होता है। उदाहरणार्थ-सूर्य राजा और रंक को समान रूप से प्रकाश देता है—वह राजा-रंक में ज़रा भी अन्तर नहीं करता। यही कारण है कि सूर्य का प्रकाश पाकर लोगों को कोई खास प्रसन्नता नहीं होती किन्तु अपने घर में दो-चार विजली की बत्तियाँ लगाकर लोग फूले नहीं समाते। इस प्रकार दूसरे का सुख देखकर लोगों को ईर्षा होती है। इस तरह की ईर्षावृत्ति के चंगुल में से निकलकर समभाव का अभ्यास करना उचित है।

महात्माजी कर्म-कथा सुनाते हुए अजना से कहते हैं—सौत के प्रति ईर्षा जाग उठने के कारण तूने प्राप्त साधनों की सहायता से सौत के वालक को कहीं छिपा दिया। पुत्र के वियोग के दुःख से दुखित होकर तेरी सौत विलाप करने लगी। तूने वह विलाप सुना मगर तेरे दिल पर उसका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। जिसके हृदय में ईर्षाभाव होता है उसका हृदय कठोर भी हो जाता है। ईर्षापूर्ण हृदय दूसरे का रुदन सुनकर और ज्यादा प्रसन्न होता है। तू भी अपनी सौत का विलाप सुनकर प्रसन्न होती थी। तुम्हारी प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर सौत ने अनुमान किया कि मेरे पुत्र के

गायब होने में इसका भी हाथ जान पड़ता है। उसने तुम्हारे पास आकर कहा—जान पड़ता है, तुमने मेरे पुत्र को गायब करने का षड्यंत्र रचा है। यही कारण है कि मेरा तो पुत्र लापता हो गया है और तुम्हारे मुँह पर प्रसन्नता दिखाई देती है ?

सौत के कथन के उत्तर में तुमने कहा—क्या मै ऐसा निकृष्ट कार्य कर सकती हूँ ? क्या तुम्हारा पुत्र मेरा पुत्र नहीं है ?

सौत ने कहा—वास्तव में तो मेरा पुत्र तुम्हारा पुत्र ही है, लेकिन पुत्रवियोग की जैसी वेदना मेरे दिल में साल रही है वैसी तुम्हारे दिल में नहीं—तुम्हारे मुख पर प्रसन्नता झलक रही है। यह देखकर मुझे सन्देह होता है कि कहीं तुमने ही तो मेरे पुत्र को नहीं छिपा दिया है !

अजना ! सौत की बात सुनकर तुमने कहा—तुम्हारा ख़याल गलत है। तुमने मुझ पर झूठा आरोप लगाया है।

ईर्षा करने पर जीवन में असत्य का प्रवेश हुए बिना नहीं रहता। एक पाप करने पर अनेक पाप करने पड़ते है। इस कथन के अनुसार अजना ने पुत्र को छिपाने का एक बुरा काम तो किया ही था, फिर पूछने पर झूठ बोलकर दूसरा पाप किया। इस प्रकार एक पाप से अनेक पापों की परम्परा चल पड़ती है।

पुत्र-वियोग की व्यथा से व्यथित होकर सौत लगातार विलाप करती रहती थी। उसकी यह करुणापूर्ण दशा देख

कर पड़ौस में रहने वाली एक स्त्री को दया आगई। उसने तुम्हें बहुत समझाया। कहा—तुम यह क्या कर रही हो? देखो तो बेचारी कैसा करुण विलाप कर रही है? इस प्रकार पुत्र को छिपा रखना उचित नहीं है।

पड़ौसी स्त्री के इस प्रकार समझाने-बुझाने से तुम समझ गईं। बालक को बाईस घड़ी तक छिपा रखने के बाद तुमने बतला दिया। पूर्व भव में यह पाप करने का ही परिणाम है कि तुम्हें इस भव में दुःख भोगना पड़ रहा है।

मुनि द्वारा कहा हुआ अपना पूर्व वृत्तान्त सुन कर अंजना ने मुनि को प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़ कर वह पूछने लगी—आप जैसे भूतकाल की बातें जानते हैं उसी प्रकार भविष्यकाल की बातें भी जानते हैं। कृपा करके बतलाइए कि मुझे इस स्थिति में कितने समय तक रहना पड़ेगा? मेरी इस अवस्था का अन्त आएगा भी या नहीं?

महात्मा बोले—अब थोड़े ही समय में तुम्हारे वह कर्म नष्ट होने वाले हैं। उसी समय तुम्हारी स्थिति बदल जाएगी। तुम्हें एक ऐसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी जो अत्यन्त प्रतापी होगा। वह बड़ा होने पर राम का दूत बनेगा और सीता की खोज करेगा।

महात्मा की भविष्यवाणी सुनकर अंजना को बहुत प्रसन्नता हुई। अंजना ने उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् वह अपनी सखी के साथ उठकर वहाँ से रवाना हो गई।

अंजना को अत्यन्त प्रसन्न देखकर वसंतमाला ने पूछा--सखी, इन महात्मा से तुम्हें ऐसा क्या मिल गया है कि तुम्हारी प्रसन्नता भीतर नहीं समाती ?

अंजना--इन महात्मा से मुझे जाज्वल्यमान ज्ञान की प्राप्ति हुई है। इसी कारण तुझे बड़ी प्रसन्नता है।

महात्माओं के पास से ज्ञान की ही प्राप्ति होती है। श्रीभगवतीसूत्र में इस विषय में भगवान् से यह प्रश्न पूछा गया है--

प्र०--तहारूवाणं समणाणं निग्गंथाणं पज्जुवासणाए किं फलं ?

उत्तर--सवणफलं

अर्थात्--भगवन् ! सच्चे निर्ग्रन्थ श्रमण की उपासना-सेवा करने से क्या लाभ होता है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा--साधु की सेवा करने से श्रवण का लाभ होता है अर्थात् श्रुतज्ञान की प्राप्ति होती है।

सती अंजना ने वसंतमाला से कहा--सखी ! मुझे भी श्रुतज्ञान का लाभ हुआ है। मै अपने कर्मों को परोक्ष रूप में ही जानती थी, इन महात्मा ने मेरे कर्मों को प्रत्यक्ष देख कर मुझे उनसे परिचित कराया है। यही नहीं, भविष्य सम्बन्धी बातें, जिनका मुझे कोई ज्ञान नहीं था, इन महात्मा के मुख से ही मैं जान सकी हूँ। महात्मा की प्रामाणिक वाणी श्रवण कर मै समझी हूँ कि अब शीघ्र ही मेरे दुःखों का अन्त आने वाला है।

वसंतमाला--कौन जाने दुःखों का अंत आएगा या नहीं!

अंजना--मुझे महात्मा की वाणी पर पूरा विश्वास है। उन्होंने पति के संबन्ध में जो कुछ कहा है उस पर भी मुझे विश्वास है और पुत्र के सम्बन्ध में कही हुई बातों पर भी।

वसंतमाला--भविष्य की बात इस समय कैसे कही जा सकती है? कौन कह सकता है कि तुम्हारी कूँख से पुत्र ही होगा और पुत्री नही होगी?

अंजना--यह हो नहीं सकता। महात्मा के कथन पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मेरी अपनी मान्यता है कि मै पुत्र को ही जन्म दूँगी।

ऊपर जो घटना दिखलाई गई है, उसके आधार पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होता है। उन महात्मा ने अंजना का भविष्य बतलाया है। पर क्या साधु-महात्मा, लोगों को इस प्रकार भविष्य बतला सकते हैं? भविष्यवाणी करना क्या साधुओं के लिए निषिद्ध नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि शास्त्र में पांच प्रकार के व्यवहार बतलाए गये हैं। आगमव्यवहारी साधु के लिए इस प्रकार का भविष्य बतलाना निषिद्ध नहीं है। हाँ, सूत्रव्यवहारी साधु ऐसा नहीं कर सकते।

जैसे भविष्य-भाषण के विषय में प्रश्न उपस्थित होता है, उसी प्रकार उनके अकेले विचरने के विषय में भी प्रश्न उपस्थित हो सकता है। वह महात्मा अकेले क्यों विहार

करते थे ? इस प्रश्न का भी यही उत्तर है कि वह आगम-विहारी थे। उन्हें अकेले विचरने का अधिकार था। सूत्रव्य-वहारी साधु उनका अनुकरण नहीं कर सकते।

काली रानी ने महावीर भगवान् से प्रश्न पूछा था कि मेरे दश पुत्र युद्ध करने गए हैं। मै उन्हें फिर देख सकूँगी या नहीं ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा था—तुम काली-कुमार को नहीं देख सकोगी। भगवान् का उत्तर सुनकर काली रानी मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ी थी।

यहाँ विचारणीय बात है कि भगवान् ने इस प्रकार का भावी कथन क्यों किया ? इससे यही समझा जा सकता है की आगमविहारी जो कुछ करते हैं, उसे देखकर सूत्रविहारी उन्ही के अनुसार सब कुछ नहीं कर सकते। आगमव्यवहारी केवली सरीखे होते हैं। अगर कोई सूत्रव्यवहारी साधु ज्योतिष आदि सीखकर और आगमव्यवहारी का अनुकरण करके भविष्य बतलाने लगे तो वह अनुचित होगा। और साधुओं के द्वारा भविष्य जानने के लिए तुम्हारा प्रयत्न करना भी अनुचित होगा। आज का यतिसमाज किसी समय पाँच महाव्रतधारी साधुसमाज ही था, मगर ऐसे-ऐसे कारणों से ही उसका पतन हो गया।

कहने का आशय यह है कि आगमव्यवहारी साधु भविष्य आदि का कथन करते हैं, इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए और उनका अनुकरण करने के लिये उन्ही

के समान कर्मों को नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए। कर्मों को नष्ट करने के लिए उन सरीखा प्रयत्न किया नहीं जा सकता तो फिर उनके समान भविष्य-भाषण का अधिकार कैसे प्राप्त किया जा सकता है? जो साधु केवल भविष्य बतलाने में ही आगमव्यवहारी साधुओं का अनुकरण करना चाहते हैं वे अवश्य ही पतित हो जाते हैं। वे महात्मा जंघाचरण, विद्याचरण आदि विद्याओं से युक्त होने के साथ ही साथ आगमव्यवहारी भी थे, अतएव सूत्रधारी साधु उनका अनुकरण नहीं कर सकते।



# १४

# हनुमान का जन्म

——::::():::——

अजना और वसंतमाला में यह बातचीत हो ही रही थी कि इतने में ही अंजना को ऐसा जान पड़ा मानों प्रसव-वेदना हो रही हो। अंजना ने वसंतमाला से कहा—सखी, मुझे किसी सुरक्षित जगह ले चलो। मुझे प्रसव-वेदना सी मालूम होती है।

वसंतमाला—सखी, इस सुनसान जंगल में कहाँ ले चलूँ।

अंजना—संकट के समय साहस का त्याग मत करो। सामने वह पर्वत दिखाई देता है न, उसी पर्वत की गुफा में मुझे ले चलो।

अंजना और वसंतमाला पर्वत के गुफा के पास पहुँची तो देखती क्या हैं कि गुफा में एक विकराल सिंह मुँह फाड़े बैठा है! सिंह को देखते ही वसंतमाला के होश उड़ गए। अंजना ने उसे धीरज देते हुए कहा—घबराने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। संकट के समय धीरज रखना चाहिए। महात्मा

के कथनानुसार मेरी कूख से परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा और उसकी रक्षा भी अवश्य होगी। जब बालक की रक्षा होने वाली है तो क्या उसे गर्भ में धारण वाली की रक्षा नहीं होगी?

दैवयोग से सिंह इस बीच उठा और लीला, करता हुआ कहीं अन्यत्र चला गया। अञ्जना ने सिंह की उसी गुफा में तेजस्वी बालक को जन्म दिया। सद्यः संजात शिशु के मुख-मण्डल पर अनोखी आभा देखकर अंजना निहाल हो गई। उसने वसंतमाला से कहा—देख तो सही, यह बालक कितना तेजस्वी है!

वसंतमाला भी इस समय हर्षविभोर हो रही थी। उसने बड़े ही चाव से बालक की ओर देखकर कहा—बालक के पिता यहाँ होते तो इसका जन्मोत्सव कैसे ठाठ से मनाया जाता! लेकिन यह तो निर्जन वन में जन्मा है।

अंजना—तू इसे दुख का कारण समझ रही है यह तेरी भूल है सखी। इसके वन में जन्म लेने का अवश्य ही कोई रहस्यपूर्ण कारण होना चाहिए।

अब अञ्जना मन ही मन चिन्ता करने लगी कि बालक की रक्षा किस प्रकार की जाय? अञ्जना इसी चिन्ता में डूबी थी कि इसी समय विमान के घंटे का शब्द उसके कानों में आ पड़ा। अचानक यह शब्द सुनकर वसंतमाला गुफा से बाहर निकली। उसने देखा, विमान इसी ओर चला आ रहा है। वसंतमाला ने अंजना से कहा। अंजना भी चकित भाव से

विमान की ओर देखने लगी। विमान तब तक और भी समीप आ पहुँचा था। धीरे-धीरे विमान गुफा के पास आकर ठहर गया। विमान मे से एक भद्र पुरुष बाहर निकले और वह अंजना की ओर बढ़ने लगे।

एक अपरिचित पुरुष को अपने समीप आते देखकर अजना सोचने लगी—यह नई विपदा फिर कहाँ से आ पड़ी?

इसी समय वह भद्र पुरुष अजना के समीप आ पहुँचे। अंजना की व्यग्रता देख उन्होंने कहा—बेटी, मै कोई पराया नही, तेरा मामा—हनुमत्पाटन का स्वामी हूँ। मुझे ज्ञात हुआ कि तुम्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है, इसलिए मै तुम्हें लेने के लिए ही यहाँ आया हूँ। चलो, मेरे साथ विमान में बैठकर घर चलो।

अंजना अपने मामा को पहचान गई। फिर भी वह कहने लगी—मामा, आपके स्नेह के लिए मै अनुगृहीत हूँ। लेकिन इस वन में मैं बहुत आनन्द मे हूँ।

अजना ने अपना सारा पिछला वृत्तान्त कह सुनाया। किस प्रकार मुनि के दर्शन हुए और किस प्रकार मुनि ने भूत और भविष्य का वृत्तान्त बतलाया, इत्यादि बातें सुनकर अंजना के मामा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने घर चलने का आग्रह किया।

आखिर अंजना अपने मामा के प्रबल आग्रह को टाल नहीं सकी। तब वह वसंतमाला के साथ बालक को गोद में

लेकर विमान में बैठी और विमान हनुमत्पाटन की ओर रवाना हुआ। रास्ते में अजना अपनी सखी के साथ धर्म की महिमा के विषय में बातें करती चली जा रही थीं। अचानक बालक विमान को देखकर और विमान के घंटे की आवाज़ सुनकर खिलखिलाकर हँसा और उछलने लगा। अञ्जना ने उसे उछलने से रोकने का बहुत प्रयन्त किया मगर उसने एक ऐसी उछाल मारी कि वह विमान के बाहर हो गया और देखते-देखते नीचे-पर्वत के शिखर पर जा पड़ा।

जो अजना भयानक से भयानक कष्ट आने पर भी पर्वत की तरह अकम्प रही थी, उसका हृदय भय और आशंका से कॉप उठा। उसके दुःख का पार न रहा। उसके मुँह से एक आर्त्त चीख निकल पड़ी—हाय ! मेरे बेटे की क्या गति हुई होगी ! आह ! यह विमान मेरे लिए तो विष के समान सिद्ध हुआ ! अंजना के मामा के दुःख का भी क्या पूछना ! फिर भी उसने अंजना को सान्त्वना देते हुए कहा—बेटी ! तू धर्म को जानती है फिर भी इतना बिलख रही है ! इस तरह बिलखने और दुःख मानने से कोई लाभ नहीं हो सकता। रोओ मत। मैं अभी जाकर बालक की जाँच करता हूँ।

इस प्रकार अजना को सान्त्वना देकर और विमान को किसी उपयुक्त स्थान पर उतारकर अजना के मामा बालक को देखने गये। मामा जब बालक के पास पहुँचे तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्होंने देखा—बालक एक शिला पर पड़ा-

पड़ा मुस्किरा रहा है ! जिस शिला पर बालक पड़ा था वह टूट गई है। मामा ने बड़ी प्रसन्नता के साथ बालक को उठा-कर गले लगा लिया। वह उसे अञ्जना के पास ले आये और उसे सौंपते हुए बोले—तुम्हारे बालक को भला कौन मार सकता है ! महात्माजी के कथनानुसार यह तो धर्मसहायक बनेगा, सीताजी की खोज करने वाला वज्र-अगी राम-दूत होगा !

जिन लोगों को धर्म पर श्रद्धा नहीं है, वे कथा के इस अश को कपोलकल्पित कहेंगे। उनके ख़याल से ऐसी बातें सिर्फ कहने भर के लिए हैं—सचाई के साथ इनका कोई सरोकार नहीं है। लेकिन धर्म पर आस्था रखने वाले लोग कहेंगे कि जिन माता-पिता ने बाईस वर्ष पर्यन्त अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, उनका पुत्र अगर इतना तेजस्वी और पराक्रमी हो तो इसमें अचरज ही क्या है ? इस तरह जिन्हें धर्म पर विश्वास है उन्हें इस घटना से कोई चमत्कार या आश्चर्य नहीं जान पड़ेगा।

इस घटना के आधार पर कोई अपने पुत्र की इसी तरह परीक्षा करना चाहेगा तो वह बुद्धिहीन ही कहलाएगा। ऐसे लोगों को पुत्र की परीक्षा करने से पहले अपने ब्रह्मचर्य की परीक्षा करनी चाहिए।

अहमदनगर में प्रोफेसर राममूर्त्ति मुझसे मिले थे। वह कहते थे—पाँच वर्ष का कोई बालक मेरे सिपुर्द कर दिया जाय और वह मेरे निर्देश के अनुसार चले तो मै बीस वर्ष

की उम्र में ही उसे अपने समान दृढ़शरीरी बना सकता हूँ। इस तरह जब बाह्य प्रयोग के द्वारा भी दृढ़शरीरी बनाया जा सकता है तो ब्रह्मचर्य के प्रयोग से संकल्प के अनुसार सिद्धि होने में आश्चर्य ही क्या है? ब्रह्मचर्य में असीम शक्ति है। इसी प्रकार धर्म की शक्ति भी कुछ कम नहीं है। धर्म की शक्ति से शरीर में भी कचास नहीं रह पाती।

कौन ऐसा अभागा होगा जो स्वस्थ और सुन्दर संतान की अभिलाषा न रखता हो? परंतु इस अभिलाषा को सफल बनाने के लिए धर्म और ब्रह्मचर्य का का पालन करने वाले कितने मिलेंगे? आज अंजना नहीं है, पवनकुमार नहीं है, और हनुमान भी नहीं हैं। फिर भी जिस धर्म की शक्ति उनमें थी वह धर्म तो आज भी मौजूद है! अतएव धर्म को अधिक-अधिक अपने जीवन में कार्यान्वित करना चाहिए। धर्म के पालन से ही कल्याण हो सकता है।

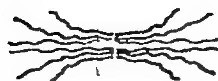
राजकुमारी होने पर भी अजना के पास कुछ नहीं बचा था। लेकिन उसके पास एक प्रभावशाली वस्तु थी जिसे चरित्रबल कहते हैं। चरित्रबल के प्रभाव से उसे सभी कुछ वापिस मिल गया और उसके संकट भी टल गये। चरित्रबल का ऐसा प्रभाव है! अतएव हमें भी चरित्रबल प्राप्त करना चाहिए, विकसित करना चाहिए और उसकी रक्षा करनी चाहिए। चरित्रबल से इह लोक में भी कल्याण होता है और परलोक में भी। चरित्रबल से ही आत्मा बलवान् बनता है और

चरित्रबल से ही आत्मा का उत्थान होता है। चरित्रबल के नाश से आत्मा का पतन होता है। जिसमें चरित्रबल नहीं है, वह मनुष्य आत्मा का उत्थान या कल्याण नहीं कर सकता। इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा गया है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

अर्थात्—जिसमें चरित्र का बल नहीं है वह आत्मा को—अपने शुद्ध स्वरूप को—प्राप्त नहीं कर सकता।

उपनिषद् के इस वाक्य का आशय यह है कि जिस व्यक्ति में चरित्र का बल नहीं है वह आत्मा का स्वरूप नहीं समझ सकता और जो आत्मा का स्वरूप ही नहीं समझ सकता वह आत्मा का कल्याण कैसे कर सकता है? इसलिए आत्म कल्याण करने की इच्छा रखने वाले को चरित्रबल प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। चरित्रबल की प्राप्ति ही आत्मोत्थान की चाबी है।



१५

# मामा के घर में

——:: ()::: ——

अंजना मामा के घर पहुँची। उसकी मामी ने यथोचित सत्कार करके कुशल-क्षेम के समाचार पूछे। अंजना की पिछली जीवन-घटना सुनकर सब को दुःख तो हुआ मगर अन्ततः सकुशल घर आ पहुँचने के कारण वह दुःख भी प्रसन्नता में छिप गया। मामा ने उत्साह और उमंग के साथ बालक का जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम हनुमान-कुमार रक्खा गया। यद्यपि अञ्जना को अपने मामा के घर किसी प्रकार का कष्ट नहीं था —सब प्रकार का सुख भी था, फिर भी उसका हृदय अतीत काल की स्मृतियों के कारण व्यथित रहता था। सर्वथा निष्कलंक होने पर भी सास-ससुर तथा माता-पिता ने उसे कलङ्क लगाया है, यह स्मृति उसे बिच्छू का डंक लगने के समान मालूम होती थी।

अजना के मुख पर उदासीनता देखकर उसके मामा ने कहा-आज सारा नगर तुम्हारे पुत्र के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आनंद

मना रहा है और तुम स्वयं ऐसी उदास दिखाई देती हो, इसका क्या कारण है ? तुमने जिन कष्टों को सहन किया है उनका स्मरण हो आया है अथवा यहाँ भी कोई कष्ट है ?

अजना—यहाँ मुझे किसी बात का कष्ट नहीं है। मुझे इसके लिए भी दुःख नहीं है कि पहले अनेक कष्ट सहन करने पड़े हैं। क्योंकि मैंने जो कष्ट सहे हैं उसके बदले में बहुत कुछ पा सकी हूँ। मैं वन में न गई होती तो महात्मा के दर्शन करने का लाभ न मिलता और अपने भूत तथा इस जीवन की भावी घटनाओं से भी मैं अज्ञात रह जाती। इस प्रकार वन में जो आनन्द मिला है, उसके आगे सारे आनन्द तुच्छ प्रतीत होते है। जंगल में तो मेरा मंगल ही हुआ है। मै वन का बहुत उपकार मानती हूँ। इसी प्रकार सास-ससुर और माता-पिता के व्यवहार के कारण भी दुःख नहीं मानती, क्योंकि अगर वे मुझे घर से बाहर न निकालते तो मै वन के लाभ और आनन्द से वंचित ही रह जाती। इस कारण मै उन सब का भी उपकार ही मानती हूँ।

इसके बाद कुछ रुक कर अजना फिर कहने लगी—मुझे और तो किसी प्रकार का दुःख नहीं है परन्तु जब से पति युद्ध में गये हैं तब से आज तक उनका कुछ भी कुशल-समाचार नहीं मिला। इसलिए जरूर मेरे चित्त में उदासी बनी रहती है। वह एक बार आ जाते तो मेरा कलङ्क धुल जाता और दर्शन भी हो जाते।

अंजना के इस कथन के उत्तर में उसके मामा ने कहा— तुम्हारी वातों में मुझे तो पूर्वापर विरोध दिखाई देता है। अभी तो तुमने कहा था कि वन में जाने पर महात्माजी के द्वारा तुमने अपने जीवन की भूत-भविष्य काल की घटनाएँ जान ली हैं अभी-अभी तुम पवनकुमार के विषय में चिन्ता प्रकट कर रही हो। जब महात्मा ने कह दिया है कि पवनकुमार विजयी होकर आएँगे और तुम्हारा मिलाप होगा तो फिर इस प्रकार की चिन्ता क्यों करती हो ? महात्मा ने पुत्र के विषय में जो वात कही थी उस पर तो तुम्हें विश्वास है; लेकिन पति के विषय में कही हुई बातों पर संदेह करती हो। इसका क्या कारण है?

मामा की वात सुनकर अञ्जना वोली—वास्तव में मुझे भान ही नहीं रहा ! आपने समय पर चेतावनी देकर मेरा वड़ा हित किया है। अव मै किसी प्रकार की चिन्ता न करके आनन्दपूर्वक रहूँगी।

कभी-कभी महापुरुष भी भ्रमणा में पड़ जाते हैं। उस समय उन्हें भी दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। उस समय से अञ्जना शांतिपूर्वक मामा के घर रहने लगी।



# १६

# अंजना की खोज

——::::()::::——

अब जरा पवनकुमार की ओर ध्यान दीजिए। इधर जब अञ्जना अनेक अकल्पित घटनाओं के चक्र में पड़ी घूम रही थी, तब पवनकुमार भी अनेक नवीन-नवीन परिस्थितियों में से गुजर रहे थे। दोनों ओर साथ-साथ घटना चक्र घूम रह था। लेकिन एक साथ घटने वाली दो घटनाओं का वर्णन एक ही साथ नहीं किया जा सकता। एक घटनाचक्र का वर्णन समाप्त होने पर ही दूसरे के विषय में कहा-जा सकता है। अतएव अब यहाँ देखना है कि पवनकुमार ने अञ्जना के महल में से निकलने के बाद क्या क्या किया ?

अञ्जना के महल में से निकलकर पवनकुमार राजा रावण के साथ युद्ध-क्षेत्र के लिए रवाना हुआ। पवनकुमार को देखकर रावण ने कहा—राजा प्रह्लाद स्वयं नहीं आए। उन्होंने अपने बदले अपने पुत्र को भेजा है।

रावण के मंत्री ने कहा—जब पुत्र योग्य हो गया हो तो

पिता को युद्ध के लिए आने की क्या आवश्यकता है ?

रावण—तुम्हारी बात सही है, लेकिन पवनकुमार क्या वरुण पर विजय प्राप्त कर सकेगा ?

मंत्री—महाराज ! राजा प्रह्लाद को अपने पुत्र पर भरोसा न होता तो वह उसे भेजते ही क्यों ? जब उन्होंने भेजा है तो अवश्य ही उन्हें अपने पुत्र के युद्ध-कौशल पर विश्वास होगा।

रावण—ठीक है। पवनकुमार कितना पराक्रमी है, सो अभी युद्धक्षेत्र में मालूम हो जायगा।

पवनकुमार ने रावण की ओर से वरुण के साथ युद्ध किया। युद्ध में पवनकुमार को विजय प्राप्त हुई। खरदूषण को बंधनमुक्त करके वह रावण के पास ले आया। पवनकुमार की विजय और खरदूषण की मुक्ति से रावण बहुत प्रसन्न हुआ। वह पवनकुमार के पराक्रम की प्रशंसा करने लगा। उसने पवनकुमार का खूब आदर सत्कार किया, उसे पुरस्कार दिया।

पवनकुमार विजय प्राप्त करने के बाद रावण द्वारा किए हुए सत्कार और पुरस्कार को शिरोधार्य करके वहाँ रहा अवश्य, लेकिन उसका चित्त उस समय भी अञ्जना में ही लगा था। भक्ति में बड़ा बल है। भक्ति के बल के कारण ही संग्राम के अवसर पर भी पुरुष का चित्त अपनी पत्नी की ओर आकर्षित होता रहता है। इसी प्रकार अगर परमात्मा

के प्रति विनम्र भक्तिभाव रक्खा जाय तो तुम्हारा चित्त परमात्मा में लीन हुए विना नहीं रह सकता। अनन्त शक्तियों के तेजस्वी पुञ्ज परमात्मा के आगे निर्वल वनने से आत्मा को ईश्वरीय वल प्राप्त होता है। जो परमात्मा के आगे निर्वल वन जाता है और संसार संवंधी वलों का आसरा छोड़ देता है, उसी को दैवी वल प्राप्त होता है।

पवनकुमार का चित्त अञ्जना में ही लगा था। वह यही सोचा करता कि मै उस सती से कव मिल सकूँगा? वाईस वर्ष तक मैंने उस पतिव्रता को अनेक कष्ट दिए है। युद्ध के लिए रवाना होते समय भी मैंने उसका तिरस्कार किया था। लेकिन धन्य है वह सती, जिसने अपने मन में लेश मात्र भी दुर्भाव नहीं आने दिया और अपने निश्चय पर अटल रही। मैं इतना दुर्व्यवहार करने के वाद जव उसके पास गया तो उसने मुझे अपराधी नहीं माना और अपने आपको ही अपराधी समझा। सचमुच वह सती अपनी जीवन-परीक्षा में उत्तीर्ण हुई है। मैंने जव उससे विदाई ली तो उसने कहा था—'मुझे कहीं कष्ट में न पड़ना पड़े, अतएव अपने मिलने की साक्षी-स्वरूप कुछ देते जाइए।' कहीं ऐसा न हो कि सती की आशंका सत्य सिद्ध हो जाय! मेरी माता का स्वभाव है भी कठोर। मै जव तक सती के कुशल-समाचार न जान लूँ, तब तक कैसे सुखी और संतुष्ट हो सकता हूँ?

रावण के यहाँ कुछ दिन ठहरने के वाद पवनकुमार

अञ्जना से मिलने की भावना करता हुआ अपने घर के लिये रवाना हुआ। राजा प्रह्लाद को मालूम हुआ कि पवनकुमार युद्ध में विजय प्राप्त करके घर आ रहा है। यह सुखद समाचार सुनकर राजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। पवनकुमार का विजय-स्वागत करने के लिए सारा नगर सजाया गया। पवनकुमार ने अत्यन्त हर्ष और उत्कंठा के साथ नगर में प्रवेश किया।

राजमहल में आने पर पवनकुमार ने माता-पिता को प्रणाम किया और उनसे कुशल-समाचार पूछे। इसके बाद सब गुरुजनों से आशीर्वाद लेकर वह अजना से मिलने के लिए अपने महल में चले गए। किसी को साहस ही न हुआ कि अञ्जना के संबंध का वृतान्त पवनकुमार के कानों तक पहुंचा दे।

अञ्जना के महल में प्रवेश करते हुए पवनकुमार ने अपने मित्र प्रहस्त से कहा—भाई! हम लोग उस रात्रि में जब हम महल में आये थे तो यह कितना सुहावना लगता था! आज वैसा नहीं लग रहा। जान पड़ता है, अजना महल में नहीं है। अजना महल में होतीं तो उनकी सखी वसंतमाला अवश्य दिखाई देती। अजनाविहीन यह महल जलरहित सरोवर के समान या प्राणशून्य देह के समान जान पड़ता है।

प्रहस्त—मैं आगे चलकर तलाश करता हूँ कि अंजना महल में है या नहीं?

यह कहकर प्रहस्त ने कदम बढ़ाये। वह महल में पहुँचा। पर अंजना के होने का कोई चिह्न उसे दृष्टिगोचर न हुआ। तब तक पवनकुमार भी वहाँ आ पहुँचे थे। उनके आते ही प्रहस्त ने कहा—महल में अंजना तो हैं ही नहीं !

वहाँ मौजूद दास-दासियों से अञ्जना के विषय में पूछताछ की गई। एक दासी ने बतलाया-'आपके चले जाने के बाद अंजना देवी गर्भवती हो गई थीं। आपकी माताजी को संदेह हुआ कि यह गर्भ मेरे पुत्र का नहीं है। इसी आधार पर उन्हें घर से निकाल दिया गया है, क्योंकि उन्हें घर में रखने से कुल को कलंक लगने की तथा निन्दा होने की संभावना थी।'

दासी के वह वचन पवनकुमार के हृदय में विषैले बाण की तरह चुभ गये। उन्हें कितनी व्यथा और कितनी वेदना हुई होगी, इसका अनुमान करना भी कठिन है। वह बोले-घोर अनर्थ हो गया ! मुझसे बड़ी भूल हुई कि मैंने माताजी से नहीं कह दिया कि मै अंजना से मिल चुका हूँ। मेरी इस भूल का ही यह दुष्परिणाम है। लेकिन माताजी को मेरे आने की प्रतीक्षा तो करनी चाहिए थी ! मेरे लौटने तक तो धीरज रखना था ! मै क्या सदा के लिए चला गया था !

प्रहस्त बोला—जब कुल को कलंक लगने का भय हो और क्रोध चढ़ आया हो तो धैर्य कैसे रह सकता है ?

पवनकुमार—तुम्हारी बात भी ठीक है। मेरी भूल के

कारण ही एक सती कलंकित समझी गई और घर से निकाली गई है ! उस सती ने जो आशंका की थी वह आखिर सच ही निकली।

पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—अञ्जना कदाचित् मायके गई हो ! हम लोग महेन्द्रपुर चलें।

प्रहस्त—महेन्द्रपुर जाने से पहले माता-पिता को जतला देना उचित होगा।

पवन०—ठीक है, तुम खबर दे आना।

पवनकुमार और प्रहस्त महेन्द्रपुर जाने के लिए रवाना हुए। राजा महेन्द्र को मालूम हुआ कि पवनकुमार अजना की खोज करने के लिए आ रहे हैं। उन्होंने नगर को सजाकर पवनकुमार का खूब स्वागत किया। मगर यह दुविधा उनके हृदय में शल्य की भाँति चुभ रही थी कि अजना के विषय में पूछे हुए प्रश्नों का इन्हें क्या उत्तर दिया जाएगा? उधर अंजना की माता भी अञ्जना को आश्रय न देने के लिए घोर पश्चात्ताप कर रही थी।

सुसराल में जिस ढँग से उनका स्वागत किया गया, उससे पवनकुमार को आशा बँध गई कि अजना यहीं होनी चाहिए। जब वह भोजन करने बैठे तब भी उनकी यही धारणा थी। लेकिन जब भोजन की सामग्री से सुशोभित थाल उनके सामने आये तो पवनकुमार ने प्रहस्त से कहा—'मित्र ! हम लोग भोजन करने और मज़ा-मौज लूटने आये हैं या अजना

की खोज करने? मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अंजना यहाँ भी नहीं है। कदाचित् अंजना न दिखाई देती तो अञ्जना का छोटा-सा शिशु तो नज़र आता ही। कदाचित वह भी न नज़र आता तो अंजना की सखी वसंतमाला नज़र आती। मगर यहाँ तो इनमें से कोई भी नहीं दिखता। इससे अनुमान होता है कि अंजना यहाँ नहीं है।

प्रहस्त—आपका कहना यथार्थ है। हम लोग जिस काम के लिए निकले हैं, वह पहले करना चाहिए। पहले अंजना देवी की तलाश और फिर भोजन करना चाहिए। जब श्रीकृष्ण दुर्योधन के घर गये थे तो दुर्योधन ने उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए भोजन आदि की बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की थीं। मगर श्रीकृष्ण ने उन तैयारियों पर तनिक भी ध्यान न देते हुए यही कहा था कि मै जिस काम के लिए आया हूँ, सब से पहले वही काम करूँगा। उसके बाद भोजन आदि के काम निबटाऊँगा। दुर्योधन ने आग्रह किया कि पहले भोजन तो कर लीजिए फिर काम तो है ही। लेकिन नीतिनिपुण श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—मै यहाँ भोजन करने नही आया हूँ, कार्य के लिए आया हूँ। अतएव मुझे सब से पहले वही काम करना चाहिए, जिसके लिए मै आया हूँ।

प्रहस्त ने भी पवनकुमार का समर्थन करते हुए यही कहा कि हमें सर्वप्रथम अंजना देवी की खोज करनी चाहिए और उसके बाद ही भोजन करना चाहिए।

प्रहस्त यह कह ही रहे थे कि उसी समय पवनकुमार के साले की लड़की वहाँ आ पहुँची। पवनकुमार ने प्रेम से उसे अपने पास बुलाया और पूछा—बिटिया, तुम्हारी फुवा (फूफी) कहाँ हैं? उसने कहा—मेरी फूफी तो कलंक लगाकर आई थीं, इसलिए मेरे पिताजी तथा दादाजी वगैरह ने उन्हें यहाँ नहीं रहने दिया।

यह समाचार सुनकर पवनकुमार को बहुत दुःख हुआ। ऐसी दुःखमय स्थिति में उन्हें भोजन भाता ही कैसे? पवनकुमार ने अपने मित्र से कहा—अब यहाँ रहने में कोई सार नहीं है। चलो, यहाँ से जल्दी चल दें। जिस घर में मेरी पत्नी को और उनकी पुत्री को आश्रय नहीं मिला, उस घर में मै भोजन कैसे कर सकता हूँ? जब मै अजना की खोज के लिए ही निकला हूँ तो फिर यहाँ भोजन कैसे कर सकता हूँ? मैं जानता हूँ कि अजना को आश्रय न देने के लिए मेरे सुसर आदि दोषी नहीं हैं। दोष तो मेरा ही है कि मैंने अजना के विषय में अपनी माता को कोई सूचना ही नहीं दी। मेरे इस दोष के कारण ही अञ्जना को इतने संकट सहने पड़े हैं। खैर, जब तक अञ्जना का पता न लगे तब तक भोजन न करने के निश्चय पर मुझे अटल रहना चाहिए।

इस प्रकार विचार कर पवनकुमार और प्रहस्त भोजन को हाथ जोड़कर उठ बैठे। उन्होंने भोजन नहीं किया। सास-सुसर ने भोजन करने के लिए बहुत आग्रह किया। उन्होंने

अपनी भूल स्वीकार की और पश्चात्ताप भी किया। लेकिन पवनकुमार अपने इस निश्चय पर डटे रहे कि जब तक अञ्जना का पता नहीं लगेगा, मै भोजन नहीं करूँगा।

राणा प्रताप ने भी प्रतिज्ञा ली थी कि जब तक चित्तौड़ का किला बादशाह से नहीं जीत लूँगा तब तक मै राजमहल में नहीं रहूँगा। इस प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए वह जङ्गल में ही रहते थे। अंबर के राजा मानसिंह ने सुना कि राणा प्रताप स्वदेशरक्षा के लिए जङ्गल में रहते हैं तो उनके हृदय में राणा के प्रति सन्मान का भाव उत्पन्न हुआ। राजपूतों के मस्तक को उन्नत रखने वाले राणा से मिलने का उन्होंने निश्चय किया। उस समय राजा मानसिंह, बादशाह अकबर की तरफ से युद्ध करने के लिए दक्षिण देश में गये थे। दक्षिण से लौटते हुए वह राणा से मिलने गये। राणा प्रताप ने उनके लिए भोजन आदि व्यवस्था करवाई, किन्तु मानसिंह का भोजन-सत्कार करने के लिए वह स्वयं नहीं गये। उन्होंने अपने पुत्र को भेज दिया। राजा मानसिंह ने राणा के पुत्र अमरसिंह से पूछा—क्यों, राणा नही आये ?

अमर०—उनके बदले में आया हूँ।

मानसिंह—मै यहाँ भोजन करने नहीं आया। मै राणा से मिलने आया हूँ।

उसी समय राणा ने आकर कहा—जिसने राजपूत होकर एक मुसलमान बादशाह को अपनी बहिन और फूफी ब्याह

दी है, और जिसने क्षत्रियत्व को कलङ्क लगाया है उसके साथ मै भोजन कैसे कर सकता हूँ ?

मानसिंह इस अपमान से एकदम क्रुद्ध हो गये। क्रोध के आवेश में उन्होंने कहा—इस अपमान का बदला चुकाया जायगा !

राणा—अपमान का बदला लेने के लिए आप स्वयं आना और अपने बहिनोई को भी साथ लेते आना।

राजा मानसिंह दाँत पीसते हुए वहाँ से रवाना हो गए। उन्होंने राणा के घर भोजन नहीं किया। दिल्ली पहुँचकर बादशाह से सारा वृत्तान्त कहा। उसके फलस्वरूप हल्दी घाटी का भीषण युद्ध हुआ।

पवनकुमार की सास ने और सुसर ने बहुत कुछ समझाया पर पवनकुमार ने भोजन नहीं किया। सास-सुसर समझ गये कि अब पवनकुमार को भोजन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। पवनकुमार क्षत्रिय वीर हैं। उन्होंने जो प्रतिज्ञा ले ली है उसे पालन किये बिना वे नहीं रहेंगे।

महेन्द्र ने लज्जित भाव से उत्तर दिया—अंजना किस ओर गई है, इस बात पर हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया।

पवनकुमार और प्रहस्त ने वन की ओर गमन किया। प्रहस्त ने निर्जन वन में पहुँच कर कहा—इस सुनसान वन में हम लोग कहाँ जाएँगे ? यहाँ कोई पुरुष भी तो दिखाई नहीं देता। ऐसी स्थिति में अकेली स्त्रियाँ कैसे यहाँ रह

सकती हैं ?

पवनकुमार ने कहा—कुछ भी हो, अपने को तो अंजना का पता लगाना है। मेरी यह प्रतिज्ञा अटल है—'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि, अर्थात् या तो कार्य सिद्ध कर लूँगा या फिर शरीर का त्याग कर दूँगा।

दोनों मित्र आगे बढ़ते गये। प्रहस्त को पवनकुमार की प्रतीक्षा के कारण बड़ी चिन्ता हो गई थी। काफी आगे बढ़ जाने पर भी जब किसी मनुष्य का दर्शन वहाँ न हुआ तो पवनकुमार के दिल में निराशा-सी उत्पन्न होने लगी। प्रहस्त ने उन्हें सान्त्वना देते हुये कहा—आप धीरज न त्यागें। हम लोग पुरुष हैं तो अजना देवी की खोज करने में हमें पुरुषार्थ करना ही चाहिए।

प्रहस्त के प्रेरक वचन सुनकर पवनकुमार ने कहा—मित्र! इस संकट के समय तुम मेरी बहुमूल्य सहायता कर रहे हो और मेरे साथ-साथ कितने ही कष्ट सहन कर रहे हो। मैं तुम्हारा बहुत ऋणी हूँ। मित्र हो तो ऐसा ही हो!

संभव था कि पवनकुमार के प्रशंसात्मक वचन सुनकर प्रहस्त को अभिमान हो आता। लेकिन उसके हृदय में लेश-मात्र भी अभिमान उत्पन्न नहीं हुआ। उसने सरलतापूर्वक यही उत्तर दिया—जब वसंतमाला स्त्री होकर भी अञ्जना देवी की इतनी सेवा कर रही है तो मैं पुरुष होकर अगर आपकी थोड़ी-सी सेवा करूँ तो कौन बड़ी बात हुई? मैं तो

अपने कर्त्तव्य का ही पालन कर रहा हूँ। इस विषय में आप मेरा उपकार मानने का कष्ट न कीजिए।

दोनों मित्रों ने वन में अञ्जना की खूब खोज की, पर कहीं पता नहीं चला। अन्त में पवनकुमार ने कहा—मित्र! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि अंजना अगर इस वन में आई होगी तो जीवित ही नहीं रही होगी! या तो वह सिंह या वाघ आदि हिंसक पशुओं का आहार बन गई होगी या उसने स्वेच्छा से ही शरीर तज दिया होगा। ऐसी दशा में अब मेरा भी जीवित रहना व्यर्थ है। जब अञ्जना ही जीवित नहीं रही तो फिर मै भी कैसे जीवित रह सकता हूँ? मित्र! तुम पिताजी के पास जाओ और उनसे कह देना—पवनकुमार अब इस संसार में नहीं है। जैसे आपने अञ्जना का मोह छोड़ दिया है उसी प्रकार पवन का भी मोह छोड़ दीजिए।

पवनकुमार का यह निराशाजनक कथन सुन कर प्रहस्त ने कहा—मित्र! आपको इस प्रकार कातर नहीं होना चाहिए। धीरज धरो, हिम्मत रक्खो। सब ठीक ही होगा। अपघात करने से कोई लाभ नहीं। इसके अतिरिक्त यह मान लेने का भी कोई कारण नहीं कि अंजना देवी जीवित नहीं। संभव है वह जीवित हों और कहीं आपकी प्रतीक्षा कर रही हों। अगर वह जीवित होंगी तो आपके अपघात करने के बाद उनकी क्या स्थिति होगी?

पवनकुमार—बात तुम्हारी यथार्थ है पर इस भयंकर

जङ्गल में उसका जीवित रहना कठिन है।

प्रहस्त—इस संबंध में अभी निश्चयात्मक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है, कोई दैवी शक्ति प्रकट हुई हो और उनकी रक्षा भी हो गई हो! इसलिए आप अपघात करने का विचार एकदम छोड़ दीजिए। आज्ञा हो तो पिताजी के पास जाकर मै सब समाचार कहे देता हूँ। वे आकर जो आज्ञा दें, आप उसका पालन करना।

पवनकुमार को समझाकर प्रहस्त, राजा प्रह्लाद के पास पहुँचे। उसने राजा को सब समाचार सुनाये। यह भी कहा कि पवनकुमार निराश होकर अपघात करने के लिए तैयार हैं। आपके पहुँचने तक मै अपघात करने से उन्हें रोक आया हूँ। अब आपको जो उचित प्रतीत हो, कीजिए।

यह दुःखद वृत्तान्त सुनकर राजा और रानी केतुमती के दुःख का पार न रहा। वह कहने लगे—हमारी एक भूल का परिणाम कितना भयंकर हो रहा है! पवनकुमार के आने तक भी अञ्जना को हमने न रक्खा और घर से निकाल दिया। इस भूल के कारण ही आज यह दुर्दिन देखना पड़ रहा है! इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ राजा प्रह्लाद, प्रहस्त के साथ, पवनकुमार के पास जाने को तैयर हुआ। दोनों उसी जङ्गल की ओर रवाना हो गए।

इधर प्रहस्त के चले जाने के पश्चात् पवनकुमार विचारने लगे—अपघात करने का यही सब से अच्छा अवसर है।

प्रहस्त के सामने अपघात करना कठिन है। इस समय वह चला गया है। दूसरा कोई देखने व रोकने वाला नहीं है। इसी मौके पर जीवन का अन्त कर डालना ठीक है। यह सोचकर पवनकुमार जैसे ही अपघात करने का उपक्रम कर रहे थे कि उसी समय राजा प्रह्लाद वहाँ आ पहुँचे। पवनकुमार को मरने के लिए तैयार देखकर प्रह्लाद ने कहा—यह क्या कर रहे हो? क्या औरत के पीछे जान दी जाती है? अभी तक दुनिया में 'सती' होने की ही बात सुनी जाती थी, पर तुम 'सता' बनने को तैयार हो रहे हो!

पिता का उपालंभ सुनकर पवनकुमार कुछ क्षण चुप रहे। फिर उदास और गम्भीर भाव से बोले—अंजना साधारण स्त्री नहीं थी पिताजी! वह सती थी। आपने जैसे उसका वियोग सह लिया है उसी प्रकार मेरा भी वियोग सह लीजिए। यही मेरी प्रार्थना है।

राजा प्रह्लाद ने चारों ओर अपने नौकर और गुप्तचर भेजे। जिस अञ्जना को किसी ने क्षण भर भी आश्रय देना उचित नहीं समझा था, उसी अञ्जना की तलाश में आज राजा प्रह्लाद के आदमी चारों दिशाओं में फैले हुए थे। यह सत्य और शील का ही प्रताप था। वास्तव में सत्य मे महान् शक्ति है। सत्य के प्रभाव से भगवान् भी मिल जाते हैं। आज कहा जाता है कि भगवान् कहीं दृष्टिगोचर नहीं होते, लेकिन भले ही भगवान् दिखाई न दें मगर सत्य तो दिखाई देता है न? शास्त्र में कहा है—'तं सच्चं खु भयवं।' अर्थात सत्य ही भगवान् है। सत्य की आवश्यकता तो नास्तिक भी स्वीकार करते हैं। भूख लगने पर नास्तिक भी 'भूख लगी है' इस प्रकार कह कर सत्य ही का सहारा लेते हैं। इस प्रकार जिस सत्य का आस्तिक और नास्तिक—दोनों आश्रय लेते हैं, उसे अपने जीवन में स्थान देना बड़ा ही कल्याणकारी है। जीवन में सत्य की सक्रिय साधना करने से परमात्मा का भी साक्षात्कार होगा।



# १७

# साम्मिलन

——::::()::::——

आखिर राजा प्रह्लाद का प्रयत्न सफल हुआ। उन्होंने जिन लोगों को अजना की खोज करने भेजा था, उनमें से एक ने आकर खबर दी—अजना अपने पुत्र के साथ इस समय हनुमत्पाटन में हैं।

यह सुखद समाचार सुनकर राजा प्रह्लाद को कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह कौन कह सकता है? पुत्र के प्राण बचे, पुत्रवधू की पुनः प्राप्ति हुई और साथ ही पौत्र भी उन्होंने पा लिया। राजा प्रह्लाद को इससे अधिक और क्या आनन्द हो सकता था?

राजा प्रह्लाद आज अत्यन्त प्रसन्न थे। समाचार पाते ही वह पवनकुमार के पास पवन की तरह तीव्र गति से दौड़ गये। पवनकुमार के पास पहुँचकर वह बोले—बेटा, चलो। अजना का पता लग गया है।

पवनकुमार सोचने लगे—पिताजी इस नाजुक मौके पर

बनावटी बात नहीं कह सकते। फिर उनका प्रसन्न वदन ही उनकी बात की सचाई का प्रमाण दे रहा है। इस प्रकार विचार कर वह पिता के साथ चलने को तैयार हो गए।

राजा प्रह्लाद अपने परिवार के साथ हनुमत्पाटन के लिए रवाना हुए। अञ्जना के मामा शूरसेन को राजा प्रह्लाद आदि के समाचार मिले तो अंजना के पास पहुँचे। अंजना को सब समाचार सुनाकर उन्होंने कहा—तुम्हारे प्रताप से आज प्रह्लाद राजा अचानक ही मेरे द्वार पर आ रहे हैं।

अंजना की प्रसन्नता का पार ही नहीं था। उसने कहा—मामा, यह मेरा नहीं, आपका ही प्रताप है। वन में पहुँचकर आपने मेरी रक्षा न की होती तो आज यह सुअवसर ही न मिलता।

मामा ने संतोष के साथ कहा—बेटी, यह सब तेरे सतीत्व की महिमा है।

इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी बनाने लगे। इतने में वसंतमाला बीच में बोल उठी—यह प्रताप तो उन मुनि महात्मा का है जिनके दर्शन वन में हुए थे। उन महापुरुष का कथन बराबर सत्य सिद्ध हो रहा है।

अंजना और उसके मामा ने वसंतमाला के कथन का समर्थन किया। सभी मन ही मन महात्मा के प्रति विनीत श्रद्धांजलि अर्पित करने लगे।

राजा शूरसेन ने सारा नगर ध्वजा-पताकाओं से सजाया

और राजा प्रह्लाद, राजकुमार पवन आदि का बड़े ही ठाठ के साथ स्वागत किया।

पवनकुमार मन ही मन सोचने लगे—पिता की आज्ञा मानने से कल्याण होता है, यह शास्त्रवचन वास्तव में सच्चा है। पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके मैंने प्राण त्याग दिये होते तो क्या स्थिति होती ?

सब लोग राजा शूरसेन के महल में आये। अंजना आज खूब ही प्रसन्न थी। समय पर अञ्जना और पवनकुमार का मिलन हुआ। दोनों एक दूसरे से प्रगाढ़ प्रेम के साथ मिले। दोनों के हृदयों मे हर्ष का आवेग इतना प्रबल था कि इसके मारे किसी के मुख से कोई शब्द ही न निकल सका। दोनों एक दूसरे को देखते रहे, मानों चिर-पिपासु नेत्र अपनी प्यास बुझाने मे लगे थे। जब हर्ष की अधिकता होती है तो गला रुँध जाता है। थोड़ी देर बाद पवनकुमार ने कहा—'सकुशल तो हो न ?'

हर्ष के अतिरेक से अंजना, पवनकुमार के प्रश्न का उत्तर न दे सकी। इसी बीच वसंतमाला भी वहाँ आ पहुँची। पवनकुमार ने हँसते हुए कहा—तुम्हारी सखी तो कुछ बोल ही नहीं सकती। तुम्हीं अपनी मुसीबतों की कहानी सुनाओ।

वसंतमाला को पिछली घटनाओं का स्मरण होते ही रोना आया। उसने कहा—हमारे ऊपर जो विपदाएँ पड़ीं, उनकी बात ही न पूछिए। आपके जाने के बाद आपकी माताजी को

सखी के गर्भ के विषय में शंका हुई और उन्होंने उन्हें घर से निकाल बाहर कर दिया।

बोलने से मनुष्य के स्वभाव की परीक्षा हो जाती है। अमुक मनुष्य गंभीर है या उच्छृंखल है, यह जानने के लिए उसके थोड़े-से बोल ही पर्याप्त हैं। गंभीर मनुष्य छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देते। वसंतमाला दासी थी। उसमें अञ्जना के समान गंभीरता नहीं थी। इसलिए वह पवनकुमार से सभी छोटी-बड़ी बातें कहने में अपना गौरव समझती थी। अजना ऐसी तुच्छ बातों को कहना अनावश्यक समझती थी।

वसंतमाला कहने लगी—घर से निकल कर हम महेन्द्रपुर गईं और फिर आदित्यपुर भी पहुँची। लेकिन हमें कहीं भी आश्रय नहीं मिला। अजना देवी के पिताजी ने तो राज्य की सीमा में भी न रहने का हुक्म भेज दिया था। आखिर हम भूख-प्यास को झेलती वन में पहुँचीं। वन में पहुँच कर वहाँ के फलोंफूलों से भूख मिटाई। वन में भटकते समय एक मुनि महात्मा के दर्शन हुए। उन महात्मा ने ही अजना देवी के भूत भविष्य की बात सुनाई। उसी वन में, सिंह की गुफा में आपके इस तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। तभी इसके मामा राजा सूरसेन विमान लेकर आ पहुँचे। जैसे-तैसे कुछ शांति पाने की आशा बँधी थी कि बीच में एक भीषण घटना घट गई। आपका यह वज्रांगी बालक खेलता-कूदता अचानक विमान से उछल पड़ा और नीचे जा गिरा लेकिन आप स्व

के पुण्य-प्रताप से उसे तनिक भी चोट नहीं पहुँची। इतना ही नहीं, वरन् जिस शिला पर बालक गिरा था, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए।

इस प्रकार कहकर वसंतमाला हनुमानकुमार को उठा लाई और धीरे से उसे पवनकुमार की गोद में रख दिया। अपने तेजस्वी बालक को इतनी दुर्घटनाओं के बाद देखकर पवनकुमार को कितना आनन्द हुआ होगा!

सभी लोग हनुमान के समान तेजस्वी और बलिष्ठ पुत्र चाहते होंगे परन्तु तेजस्वी संतान प्राप्त करने के लिए पवन-कुमार और अञ्जना के समान ब्रह्मचर्य पालने का भी विचार करना चाहिए। उनके समान ब्रह्मचर्य का पालन शक्य न हो तो अन्ततः परस्त्री को माता-बहिन के समान मानने से शील गुण उत्पन्न होगा और शील गुण के साथ अन्य अनेक सद्गुण उत्पन्न होंगे। अतएव शीलगुण प्राप्त करने के लिए सदैव ऊँची और पवित्र भावना भानी चाहिए।

तेजस्वी बालक को देखकर और उसके पराक्रम की कथा सुनकर पवनकुमार से कहा—'यह बालक वास्तव में बड़ा पराक्रमी जान पड़ता है।

अजना इस कथन का कुछ उत्तर दे, उससे पहले ही वसंतमाला बोल पड़ी—'उस समय ऐसे घोर संकट की हालत थी कि बालक का जन्मोत्सव तक न मना सकीं! इतना कह कर फिर वसंतमाला रोने लगी।

तब अंजना ने कहा—'तू फिजूल बातें करके क्यों रो रही है ? मैं दिखावटी उत्सव को कोई महत्व नहीं देती। मैं तो अन्तःकरण से यही चाहती हूँ कि बालक में सत्य-शील आवे और यह भी अपने पिता के समान पराक्रमी बने।'

इतना कहकर और वसंतमाला को शान्त करके अंजना ने पवनकुमार से कहा-'आपने हमारा वृत्तान्त तो पूछ लिया पर अपने विषय में कुछ भी न बताया ! अब आप अपनी बीती भी सुनाइए।'

अंजना का कथन सुनकर पवनकुमार सोचने लगे-वास्तव में यह सती परदुःख में दुःख और परसुख में सुख मानने वाली है। वह अपना वृत्तान्त न कह कर मेरा वृत्तान्त पूछती है ! इस प्रकार मन ही मन सोचकर वह अंजना से कहने लगे-तुमसे विदा लेकर मैं रावण के पास पहुँचा। रावण ने मुझसे कहा—तुम आये सो अच्छा ही है, मगर जब वरुण पर विजय प्राप्त करके आओगे तब मैं तुम्हारा सत्कार करूँगा। आखिर मैं वरुण के साथ युद्ध करने गया। युद्ध एक वर्ष तक चलता रहा। एक वर्ष बाद मेरी विजय हुई। मैंने खरदूषण को शत्रु के पंजे में से छुड़ाया। रावण मेरी विजय से अत्यन्त प्रसन्न हुआ। लौटने पर उसने मेरा खूब सत्कार किया।

युद्ध में विजय प्राप्त करके जब मैं खुशी-खुशी घर आया तो तुम्हारे निकाले जाने का हृदयवेधी समाचार सुनने को मिला। मैं अपने मित्र प्रहस्त के साथ तुम्हारी खोज में निकला।

हम दोनों सीधे महेन्द्रपुर पहुँचे पर वहाँ तुम्हारा पता नहीं लगा। वहाँ से निराश होकर फिर भयानक वन में भटकते रहे। जब वहाँ भी तुम्हारा पता न मिला तो मुझे बड़ी निराशा हुई। निराशा से प्रेरित होकर मैंने प्राणत्याग करने का संकल्प कर लिया। अपना संकल्प मैंने जब प्रहस्त पर प्रकट किया तो वह बहुत दुखी हुआ। उसने मुझे समझाने का यत्न किया पर निराशा के अंधकार में मुझे कुछ सूझा नहीं। मैंने उसका कहना स्वीकार नहीं किया। आखिर उसने कहा—मैं आपके संकल्प की सूचना पिताजी को देकर आऊं तब तक आप प्राणत्याग न करें। मैंने यह स्वीकार किया किन्तु उसके चले जाने के बाद जब मैं अकेला वन में रह गया तो फिर विचारों की आँधी चलने लगी। सोचा-अभी एकान्त है--रोकने वाला नहीं है। प्रहस्त और पिताजी के आने से पहले ही अपने प्राणों को शरीर से मुक्त कर लेना अच्छा है। यह सोचकर जैसे ही मैं अपने संकल्प को पूर्ण करने के लिए उद्यत हुआ कि उसी समय पिताजी प्रहस्त के साथ आ पहुँचे। उन्होंने मुझे प्राण-त्याग नहीं करने दिया और आज हम लोगों को मिलने का सुअवसर मिल गया।

पवनकुमार का वृतान्त सुनकर अंजना के नेत्रों में आँसू आ गये। उसने कहा—मेरी तकदीर अच्छी थी कि ऐन मौके पर पिताजी वन में जा पहुँचे। मैं परमात्मा और अपने श्वसुरजी का उपकार मानती हूँ, जिन्होंने मेरे सुहाग

की रक्षा की।

पवनकुमार बोले—मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो प्रेम जागृत हुआ, वह तुम्हारे सुन्दर शरीर के कारण नहीं वरन् सत्य और शील के कारण। मेरी भूल ने ही तुम्हें कष्ट में डाला था। भूल का प्रायश्चित्त करने के निमित्त ही मैं प्राणों का उत्सर्ग करना चाहता था।

धर्म का पालन करने के कारण ही आज हम अञ्जना और पवनकुमार की प्रशंसा करते हैं। राम की प्रशंसा और रावण की निन्दा क्यों की जाती है? इसी लिए कि राम में धर्म और न्याय था किन्तु रावण में धर्म और न्याय नहीं था। इससे भलीभांति सिद्ध होता है कि वास्तव में व्यक्ति का स्वयं कोई मूल्य नहीं है—मूल्य होता है उसके सद्गुणों का। गुण ही प्रशंसापात्र होते हैं। अतएव प्रत्येक आत्महितैषी व्यक्ति को चाहिए कि वह धर्म और न्याय को अपने हृदय में धारण करे। धर्म और न्याय को स्थान देने पर भी अगर कोई तुम्हारी प्रशंसा नहीं करता तो मत करने दो। तुम अपने हृदय में इस प्रकार का विचार ही मत लाओ। दुनिया में प्रशंसा न होने पर भी धर्म और न्याय की आराधना निष्फल नहीं हो जाएगी। आगे चल कर एक-एक परमाणु का भी हिसाब होगा। इसलिए यह सोचकर उदास न होओ कि हमारी कोई गिनती ही नहीं करता। परमात्मा के यहां सब की गणना है, यह मान कर धर्म और न्याय को हृदय में स्थान

देने का उत्साहपूर्वक प्रयत्न करो।

अजना और पवनकुमार को परमात्मा पर पूरी आस्था थी और इसी कारण वे दोनों अपने-अपने धर्म का पालन करने में समर्थ हुए। परमात्मा सर्वज्ञ है, ऐसा मानने से धर्म का पालन दृढ़तापूर्वक हो सकता है। जैसे सच्चा सेवक अपने स्वामी की अनुपस्थिति में भी बराबर काम करता है, उसी प्रकार सच्चा भक्त भी यही सोचता है कि मुझे दूसरा कोई देखे या न देखे, परमात्मा तो सभी जगह देखता ही है। जब जड़ मशीन भी अपना कार्य नियमित रूप से करती है तो क्या हम लोग चेतन-विवेकविभूषित-होकर भी जड़ मशीन की भाँति भी अपना कार्य नियमित नहीं कर सकते? जब कोई देखे तो धर्म का पालन करें और जब देखने वाला न हो तो धर्म को धता बता दें! सच्चे भक्त के लिए तो प्रति-क्षण धर्म तथा न्याय का आचरण करना ही बतलाया गया है। शास्त्र में कहा है—

'से दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा।'

अर्थात् दिन हो या रात हो, अकेला हो या समूह में हो, सोता हो या जागता हो, जो समान भाव से धर्म का पालन करता है, वही सच्चा साधु या भक्त है।

राजा महेन्द्र भी उस समय हनुमत्पाटन में पहुँच गये थे। उन्होंने पवनकुमार को महेन्द्रपुर चलने का निमंत्रण दिया और राजा प्रह्लाद ने घर चलने को कहा। पवनकुमार ने

विचार किया—पिताजी का घर ही मेरा घर है। अतएव अपने घर न जाकर श्वसुर के घर जाना अनुचित है। सुसराल में कितना ही आदर क्यों न होता हो, आखिर तो अपने घर ही जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पहले अपने घर ही जाना उचित है।

पवनकुमार और अंजना, हनुमानकुमार तथा वसंतमाला सहित प्रह्लाद राजा के साथ अपने घर के लिए रवाना हुए। राजा शूरसेन ने विचारा—यद्यपि राजा महेन्द्र के साथ मेरा सीधा संबंध है फिर भी उचित तो यही है कि पहले पवनकुमार अपने घर जाए। अतएव मैं कैसे कह सकता हूँ कि वह पहले सुसराल जाए। इस प्रकार विचार कर शूरसेन ने पवनकुमार आदि को प्रसन्नतापूर्वक विदा दी।

राजा प्रह्लाद के आह्लाद का इस समय क्या कहना है? वह बड़ी ही प्रसन्नता के साथ पवनकुमार आदि को साथ लेकर घर की ओर चले। अपने नगर के बाहर तक आकर रानी केतुमती ने सबका स्वागत किया और फिर पवनकुमार को संबोधित करके कहा—बेटा, मैं तो तुझे भूल गई थी पर तेरे सौभाग्य से तू मुझे नहीं भूला था। मैंने तेरे आने की राह न देखकर अंजना को घर से बाहर निकाल दिया।

केतुमती इतना कह पाई थी कि अंजना वहाँ आ पहुँची। उसने केतुमती के चरणों में प्रणाम किया। केतुमती का दिल भर आया। गद्गद कंठ से वह बोली—बहू! मैंने तुम्हें बहुत

अञ्जना ने राग-द्वेष पर बहुत कुछ विजय प्राप्त कर ली थी, यही कारण है कि वह भयंकर से भयंकर और अनुकूल से अनुकूल परिस्थितियों में समभाव रख सकी। केतुमती पर अंजना को क्रोध आना स्वाभाविक था। लेकिन उसने क्रोध न करके उलटा उपकार माना। वह कहती थी-सास ने मेरी परीक्षा की है। ईख की प्रशंसा इसी कारण होती है कि घानी में पेरने पर भी वह अपनी मिठास नहीं छोड़ती। सोने की प्रशंसा तभी होती है जब वह ताप-कष-छेद द्वारा शुद्ध होता है। जैसे विपत्ति सहने पर भी ईख और सोना अपना गुण नहीं त्यागते, उसी प्रकार अंजना ने भी अपने सद्‌गुणों का परित्याग नहीं किया। क्या अंजना के इस विवेकपूर्ण व्यवहार का असर दूसरों पर नहीं पड़ा होगा? अंजना की उदारता देख कर सभी लोगों ने विचार किया होगा कि शक्ति होने पर भी क्षमा करना ही सच्ची क्षमा है।

सब ने अपने-अपने दिल की बातें एक दूसरे से कह लीं और परस्पर क्षमा-याचना भी कर ली। इसके बाद केतुमती ने प्रह्लाद से कहा--अब पवनकुमार सब प्रकार से योग्य हो गया है। अञ्जना भी योग्य है और फिर हमें पौत्र-रत्न भी प्राप्त हो गया है। अब हमें संसार-व्यवहार में ही नहीं फँसे रहना चाहिए। अब अपने कंधों का भार पवनकुमार और अंजना को सौंपकर हम लोगों को आत्मकल्याण में संलग्न होना चाहिए।

पहले के लोग पुत्र के योग्य होते ही अपने गृहस्थ-जीवन का भार उसके सिपुर्द करके आत्म-कल्याण की आराधना में संलग्न हो जाते थे। वे लोग आज-कल के लोगों की तरह मरते दम तक हाय-हाय नहीं करते थे और न हाय-हाय करते मरते थे। उनके त्याग का प्रभाव उनकी संतान पर भी पड़ता था और फिर संतान भी यथासमय इसी त्याग के आदर्श का अनुकरण करती थी। किन्तु आजकल पुत्र-पौत्र के योग्य हो जाने पर भी लोग मरते समय तक सांसारिक प्रपंचों में फँसे रहते हैं और हाय-हाय करते हुए ही मौत के शिकार होते हैं। माता-पिता के इस व्यवहार का प्रभाव उनकी संतान पर पड़े बिना कैसे रह सकता है? नतीजा यह होता है कि संतान भी सांसारिक कार्यों में फँसी रहना पसंद करती है और अन्त में वह भी झूर-झूर कर मरती है। माता पिता त्याग के आदर्श का अनुकरण करें तो संतान त्याग का महत्त्व समझे और त्याग का अनुकरण करे।

एक आदमी हाय-हाय करते मरने का आदर्श अपनी संतान के सामने उपस्थित करता है और दूसरा आदमी त्याग का आदर्श रखता है। इन दोनों में कौन अपनी संतान के सामने ऊँचा आदर्श उपस्थित करता है? इस प्रश्न के उत्तर में आप यही कहेंगे कि जिसने त्याग का आदर्श उपस्थित किया है उसी ने अच्छा काम किया है? अगर वास्तव में ही आप को यह बात अच्छी लगती हो तो आप भी अपनी संतान के सामने यही आदर्श रखिए।

---

# १८

# हनुमान की वीरता

——::::()::::——

राजा प्रह्लाद, पवनकुमार को राजपाट सौंपकर केतुमती के साथ आत्मा का कल्याण करने लिए वन में गये। जब माता-पिता वन में चले गये तो पवनकुमार ने अञ्जना से कहा—अब हम लोगों पर राज्य संबंधी कर्त्तव्य का भार आ पड़ा है, हमें क्या करना चाहिए ?

अञ्जना—हम लोगों के सामने माता-पिता ने त्याग का जो आदर्श उपस्थित किया है, उसी आदर्श के अनुसार हमें भी एक दिन हनुमानकुमार को राजपाट सौंपकर आत्मकल्याण करना चाहिए।

इस प्रकार अञ्जना ने अपने हृदय की उच्च भावना व्यक्त की। उसने यह नहीं कहा कि माता-पिता के वन चले जाने के कारण अब हमें स्वतंत्रता मिल गई है, इसलिए स्वतंत्र होकर राजकीय वैभव भोगना चाहिए। ऐसी हलकी भावना न करके ऊँची भावना रखने के कारण ही अञ्जना महासती

बन सकी थी।

पवनकुमार और अञ्जना हनुमानकुमार को उसके योग्य शिक्षा देने लगे।

यहाँ एक प्रश्न किया जा सकता है। वह यह है कि—राजा प्रह्लाद पवनकुमार को राज्य-भार सौंपकर वन में चले गये और पवनकुमार, हनुमानकुमार को सौंपकर जाने का विचार रखते हैं तो पहले ही राजपाट त्यागकर या स्वीकार ही न करके संयम क्यों नहीं धारण करते? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि शास्त्र में कहा है कि पुत्र को राज्यासन पर स्थापित करने के बाद दीक्षा ली। शास्त्र के इस उल्लेख में बहुत कुछ रहस्य छिपा हुआ है। इस उल्लेख से स्पष्ट जान पड़ता है कि संसार का भार किसी को सौंपे बिना यों ही भाग जाना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। ऐसा करने से आत्मा का कल्याण तो होगा मगर अपना भार किसी को सौंपने की व्यवस्था किये बिना ही चल देने से दूसरों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? इस बात को नजर के सामने रखकर अपने भार की समुचित व्यवस्था करने के पश्चात् ही संयम लिया जाता था। शास्त्र में ऐसा ही आदर्श उल्लिखित हुआ देखा जाता है। आनन्द श्रावक ने भी अपने कुटुम्ब-परिवार के लोगों को इकट्ठा करके और उन्हें भोज देकर कहा था—अब मैं अपने स्थान पर अपने पुत्र को नियुक्त करता हूँ। इसलिए आपको जो कुछ पूछना हो, इसी से पूछना। मैं तो भगवान्

महावीर का मार्ग ग्रहण करना है। इस प्रकार आनन्द श्रावक ने आगे-पीछे की व्यवस्था करने के बाद ही ग्यारह प्रतिमाएं धारण की थीं। शास्त्रकार आनन्द श्रावक के चरित को आदर्श बतलाते हैं। व्यक्तिगत बात अलग है किन्तु समुच्चय रूप से तो यही राजमार्ग है। शास्त्र में बतलाये हुए इस राजमार्ग पर चलने के विचार से ही पवनकुमार तथा अंजना भी हनुमान को राजपाट सौंपकर संयम की आराधना द्वारा आत्मा का कल्याण करने की भावना रखते थे।

पवनकुमार के इस आदर्श को दृष्टि के सामने रखो और पुत्र जब योग्य हो जाय तो अपने कर्त्तव्य का भार उसे सौंप कर आत्मकल्याण का मार्ग स्वीकार करो। इसी से मनुष्य का सच्चा और शाश्वत हित है। तृष्णा में फंसे रहकर आखिर हाय-हाय करते हुए मरने में न तुम्हारा हित है और न तुम्हारे कुटुम्ब का ही।

पवनकुमार जब राजा थे तब वरुण और रावण के बीच फिर झगड़ा पैदा हो गया। वासुदेव के अधीन रहने वाले राजा तो शान्त रहते हैं किन्तु प्रतिवासुदेव के राज्य में एक न एक झगड़ा-फसाद होता ही रहता है। रावण ने वरुण को दबाने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग किया लेकिन वह वरुण को जीत न सका। तब किसी ने रावण को सलाह दी—वरुण को जीतने के लिए राजा पवनकुमार को बुलाना चाहिए। पहले भी उन्होंने ही उसे परास्त किया था।

पवनकुमार को बुलाने की सलाह रावण को भी पसंद आई। उसने पवनकुमार को ही बुलवा भेजा। पवनकुमार यद्यपि धर्म को जानते थे किन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन करना भी आवश्यक मानते थे। वर्णनाग नतुआ श्रावक था और बेला-बेला का पारणा करता था· फिर भी जब राजा चेटक ने उसे युद्ध में जाने का आदेश दिया तब वह पारणा करने के लिए भी नहीं रुका। वह दो के बदले तीन उपवास करके स्वामी की आज्ञा पालने के लिए तत्काल युद्ध के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार पहले के लोग अपना ही स्वार्थ न देखते हुए स्वामी की आज्ञा का पालन करना भी अपना कर्त्तव्य समझते थे।

रावण का बुलावा आने पर पवनकुमार युद्ध में जाने के लिए तैयार हुए। कुमार हनुमान को पता चला कि पिताजी रावण की तरफ से वरुण के साथ युद्ध करने की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने सोचा—मेरे होते हुए पिताजी को युद्ध में जाने की क्या आवश्यकता है? मेरे पिताजी अपने पिताजी को रोककर स्वयं युद्ध में गये थे तो मै अपने पिताजी को रोककर स्वयं क्यों न जाऊँ? वह युद्ध करने जाएँ और मै घर में बैठा रहूँ, यह उचित नहीं है। इस प्रकार विचार करके हनुमान-कुमार अपने पिता के पास पहुँचे। वह कहने लगे—आपको युद्ध में जाने की क्या आवश्यकता है? जब मै युद्ध में जाने को प्रस्तुत हूँ तो आपके जाने की आवश्यकता ही क्या है? अब

की बार में ही जाऊँगा।

हनुमान की वीरतापूर्ण वाणी सुनकर पवनकुमार ने कहा—बेटा, अभी तू बहुत छोटा है। अभी तू युद्ध करने और शत्रुओं के आघातों को सहन करने के योग्य नहीं हुआ है। इस छोटी सी उम्र में तुझे युद्ध करने नहीं भेजा जा सकता।

हनुमान—आप मुझे छोटा न समझिए। मेरी उम्र भले थोड़ी हो, पर मेरा पराक्रम शत्रुओं से जरा भी थोड़ा नहीं है। अंकुश छोटा-सा होता है लेकिन वह मदोन्मत्त हाथियों को अपने वश में कर सकता है। इसी प्रकार मैं भी वरुण को वश में कर लूँगा। आप मुझे युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दे दीजिए।

पवनकुमार सोचने लगे—'हनुमान बालक होने पर भी वीर है। उसके वचनों से ही वीरता टपकती है।' सिद्धान्त में कहा है कि वीर की वीरता और कायर की कायरता उसके वचनों से ही मालूम पड़ती है।

हनुमान की वीरतापूर्ण बात सुनकर पवनकुमार को हर्ष तो हुआ, लेकिन उसकी बालक-अवस्था देखते हुए अकेले को भेज देने की हिम्मत वह न कर सके। उन्होंने सोचा—शायद हनुमान मेरे ही समान वीर है लेकिन वह और वरुण को कैसे जीत सकेगा? कदाचित् हार गया तो मेरी प्रतिष्ठा में बट्टा लगेगा और न जाने क्या अनर्थ हो जाय!

हनुमान अपने पिता के मन की बात भाँप गए। उन्होंने विनयपूर्वक कहा—पिताजी, मालूम होता है, आपको मेरी वीरता के विषय में संदेह है। लेकिन मै विश्वास दिलाता हूँ कि युद्ध में मै अवश्य ही विजयी होकर लौटूँगा। जैसे आप छोटी उम्र में युद्ध-क्षेत्र में गए थे और विजयी होकर लौटे थे, उसी प्रकार मै भी युद्धक्षेत्र में अपनी वीरता का परिचय दूँगा और विजय प्राप्त करके चारो दिशाओं में आपकी कीर्ति-पताका फहराऊँगा।

पवनकुमार हनुमान की वीरता और उत्साह से पूर्ण बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दे दी। पिता की आज्ञा पाते ही हनुमान ने जाने की तैयारी शुरु कर दी। अपनी सेना तैयार की और माता-पिता को वन्दन करके वरुण के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ।

उधर वरुण भी युद्ध के लिए अपनी सेना तैयार कर रहा था। जब उसे विदित हुआ कि पवनकुमार के बदले उसका किशोरवयस्क पुत्र हनुमान युद्ध करने आ रहा है तब वह मन ही मन मुस्किराया और कहने लगा—जान पड़ता है पवनकुमार युद्ध से डर गया है और इसी कारण वह अपने कोमल-काय पुत्र को भेज रहा है। हाय, कितना निर्दय है वह जो मौत के भय से स्वयं महल में बैठा है और अपने नादान बालक को भेज रहा है! खैर पवनकुमार स्वयं आया

होता तो युद्धक्षेत्र में मैं उसके दाँत खट्टे कर देता। लेकिन उस छोटे-से बालक के सामने मैं क्या युद्ध करूं! उसे तो मैं यों ही सरल समझता हूँ। पर ऐसा करने से दुनिया में मेरी प्रशंसा के बदले निन्दा ही होगी।

इस प्रकार विचार कर वरुण ने हनुमान के सामने युद्ध करने के लिए अपने पुत्रों को ही भेजने का विचार किया। वरुण ने अपने पुत्रों के सामने जब यह चर्चा की तो वह भी लड़ने को तैयार हो गए। वह कहने लगे—पिताजी! हम लोग रण में विजय प्राप्त करके लौटेंगे। इस प्रकार वरुणपुत्र भी रवाना हुए।

हनुमान युद्धकला में प्रवीण थे। प्राचीन काल में युद्ध-कला भी सिखलाई जाती थी। उस समय आज की भाँति नास्तिकता बढ़ाने वाली शिक्षा नहीं दी जाती थी। वरन् ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे विद्यार्थी वीर, धीर और गंभीर बनें।

हनुमान अपने पिता के मन की बात भाँप गए। उन्होंने विनयपूर्वक कहा—पिताजी, मालूम होता है, आपको मेरी वीरता के विषय में संदेह है। लेकिन मैं विश्वास दिलाता हूँ कि युद्ध में मैं अवश्य ही विजयी होकर लौटूँगा। जैसे आप छोटी उम्र में युद्ध-क्षेत्र में गए थे और विजयी होकर लौटे थे, उसी प्रकार मैं भी युद्धक्षेत्र में अपनी वीरता का परिचय दूँगा और विजय प्राप्त करके चारों दिशाओं में आपकी कीर्ति-पताका फहराऊँगा।

पवनकुमार हनुमान की वीरता और उत्साह से पूर्ण बातें सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दे दी। पिता की आज्ञा पाते ही हनुमान ने जाने की तैयारी शुरु कर दी। अपनी सेना तैयार की और माता-पिता को वन्दन करके वरुण के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ।

उधर वरुण भी युद्ध के लिए अपनी सेना तैयार कर रहा था। जब उसे विदित हुआ कि पवनकुमार के बदले उसका किशोरवयस्क पुत्र हनुमान युद्ध करने आ रहा है तब वह मन ही मन मुस्किराया और कहने लगा—जान पड़ता है पवनकुमार युद्ध से डर गया है और इसी कारण वह अपने कोमल-काय पुत्र को भेज रहा है। हाय, कितना निर्दय है वह जो मौत के भय से स्वयं महल में बैठा है और अपने नादान बालक को भेज रहा है! खैर पवनकुमार स्वयं आया

होता तो युद्धक्षेत्र में मैं उसके दाँत खट्टे कर देता। लेकिन उस छोटे-से बालक के सामने मैं क्या युद्ध करूँ! उसे तो मैं यों ही मसल सकता हूँ। पर ऐसा करने से दुनिया में मेरी प्रशंसा के बदले निन्दा ही होगी।

इस प्रकार विचार कर वरुण ने हनुमान के सामने युद्ध करने के लिए अपने पुत्रों को ही भेजने का विचार किया। वरुण ने अपने पुत्रों के सामने जब यह चर्चा की तो वह भी लड़ने को तैयार हो गए। वह कहने लगे—पिताजी! हम लोग रण में विजय प्राप्त करके लौटेंगे। इस प्रकार वरुणपुत्र भी रवाना हुए।

हनुमान युद्धकला में प्रवीण थे। प्राचीन काल में युद्ध-कला भी सिखलाई जाती थी। उस समय आज की भाँति नाहिम्मत बनाने वाली शिक्षा नहीं दी जाती थी! वरन् ऐसी शिक्षा दी जाती थी जिससे विद्यार्थी वीर, धीर और गभीर बने।

हनुमान ने विद्याबल से सेना की ऐसी सुन्दर व्यूहरचना की थी कि शत्रुसैन्य को चारों ओर से घेर कर परास्त किया जा सके। उधर वरुणपुत्र भी अपनी सेना के साथ रण-क्षेत्र में आ पहुँचे। सेनाओं में मार-काट आरंभ हो गई। वरुणपुत्र आरंभ में तो बड़े उत्साह के साथ जूझे। हनुमानकुमार ने ऐसी योजना की थी कि शत्रु-सेना ज्यों-ज्यों बीच में आती गई, त्यों-त्यों उनकी सेना पीछे हटती गई। यह देख कर

वरुणकुमारों ने समझा कि हनुमान की सेना भाग रही है। लेकिन जब हनुमान ने देखा कि शत्रुओं की सेना युद्धभूमि के बीचों बीच आ पहुँची है तब उन्होंने चारों ओर से इतना प्रबल आक्रमण किया कि शत्रुसेना घबरा उठी और इधर-उधर भागने लगी। वीर हनुमान ने अपनी सेना के वीरों को आज्ञा दी कि वरुणपुत्रों को पकड़ लिया जाय। आज्ञा पाते ही वरुणकुमार कैद कर लिये गये। उन्हें नागपाश में बाँध दिया गया। नायकों के कैद हो जाने पर सेना कब ठहर सकती थी? वह इधर-उधर भाग खड़ी हुई। इस प्रकार वीर हनुमान ने युद्धकौशल से तथा विद्या-बल से शत्रुओं से विजय प्राप्त की। हनुमान को विजयी हुआ देखकर रावण ने उसे खूब शाबाशी दी। उसका अच्छा आदर-सत्कार किया।

अपने पुत्रों के कैद होने का समाचार पाकर राजा वरुण उन्हें छुड़ाने और युद्ध करने के लिए आया। वरुण अब भी यही समझता था कि बालक हनुमान को जीत लेना तो खिलवाड़ के समान है।

वरुण को युद्धक्षेत्र में आते देख कुमार हनुमान प्रसन्न हुए। वह सोचने लगे—अच्छा हुआ जो स्वयं वरुण आ गया! मुझे तो इन्हीं से मतलब था। मैं वरुण को ही कैद करना चाहता था।

वरुण को युद्धक्षेत्र में अकेला आते देख हनुमान ने विचार किया-वरुण अकेला है, इसलिए उसे वश में करने के लिए विद्या-

बल की सहायता लेना उचित नहीं है, और उसने विद्याबल की सहायता लेना छोड़ दिया।

उधर वरुण ने देखा—बालक हनुमान अकेला है और वह रथ में नहीं बैठा है, तो फिर उससे बड़ा होकर मै रथ में बैठकर युद्ध कैसे कर सकता हूँ ? इस तरह विचार करके वरुण भी रथ से नीचे उतर पड़ा।

हनुमान और वरुण में मल्लयुद्ध होने लगा। कभी हनुमान नीचे गिर पड़ते तो कभी वरुण नीचे जा पहुँचते। थोड़ी देर इसी तरह युद्ध होता रहा। परन्तु हनुमान आखिर अल्पवयस्क ठहरे और वरुण प्रौढ़। वरुण ने हनुमान को पछाड़ दिया। वह हनुमान की छाती पर चढ़ बैठा और उसके बाल खींचने लगा। रावण यह सब दृश्य देख रहा था। उसने सोचा—हनुमान की हार मेरी ही हार होगी। यह सोचकर उसने हनुमान को ललकारा। रावण की ललकार सुनते ही हनुमान में दुगना साहस और बल आ गया। उसने ऐसा जोर मारा कि वरुण नीचे आ रहा और हनुमान उसकी छाती पर चढ़ बैठे। अन्त में वरुण भी कैद कर लिया गया।

वरुण जब कैद हो चुके तो उन्हें बड़ी उदासी आई। वह सोचने लगे—मुझे चाहे हनुमान ने वश में किया हो चाहे रावण ने, लेकिन वास्तविकता यह है कि मै पराधीन हो चुका हूँ। अब मुझे रावण के अधीन होकर रहना पड़ेगा। अब क्या उपाय किया जाय कि मै पराधीन न बनूं और रावण

के सामने मुझे सिर न झुकाना पड़े ।

अन्त में वरुण ने मन ही मन निश्चय करके कहा—'महाराज ! भले ही आप मेरे प्राण ले लें, पर मैं परमात्मा के सिवाय किसी दूसरे के सामने मस्तक नहीं झुका सकूँगा । अगर आप मुझे बन्धन मुक्त कर दें तो मैं संयम स्वीकार कर आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ ।'

वरुण की बात सुनकर हनुमान ने रावण से कहा—जो पुरुष संयम स्वीकार करना चाहता है उसे बन्धन में रखना योग्य नहीं है । अतएव राजा वरुण को मुक्त कर देना चाहिए ।

हनुमान की सलाह मानकर रावण ने वरुण को मुक्त कर दिया । वरुण ने उसी समय संयम ग्रहण कर लिया । संयम-धारी वरुण मुनि को रावण और हनुमान आदि ने वन्दन किया । वन्दन करने के बाद वरुण मुनि ने रावण से कहा—आपका मान अखण्ड रहा ।

संयम का भलीभांति पालन करते हुए वरुण मुनि ने आत्मा के कल्याण के लिए अन्यत्र विहार कर दिया ।

वरुण मुनि के विहार होने के पश्चात् रावण, वरुण के नगर में गया । उनके पुत्रों को राज्यासन पर आसीन किया और अपनी अधीनता स्वीकार कराई । वरुणकुमारों ने विचार किया—हनुमान बालक होने पर भी अत्यन्त पराक्रमी है । अगर अपनी बहिन का विवाह उनके साथ कर दिया जाय तो अच्छा होगा । आखिर हनुमान के साथ लग्न-सम्बन्ध कर

दिया गया। उन्होंने रावण से कहा—अब आपके साथ हमारा ऐसा सम्बन्ध जुड़ गया है कि भविष्य में विग्रह होने का कोई कारण उपस्थित न होगा।

इस विवाह-सम्बन्ध से रावण भी बहुत प्रसन्न हुआ। रावण, हनुमान को अपने साथ लंका ले गया और वहाँ उनका दिल खोलकर सत्कार किया। उसने कहा—हनुमान-कुमार! तुमने राजा वरुण को जीता है, इसलिए तुम्हें धन्य-वाद देता हूँ।

हनुमान ने कहा—वरुण के विजेता आप हैं, मै नहीं। मै तो अभी बालक हूँ। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को विजय का यश देने लगे।

आज तो यह हालत है कि दूसरों के किये काम को लोग अपना प्रकट करके स्वयं यश लूटना चाहते हैं और अहंकार से फूले नहीं समाते। लेकिन वास्तव में महान् वह है जो अहंकार पर विजय प्राप्त करता है।

हनुमानकुमार के वर्त्ताव से अत्यन्त प्रसन्न होकर रावण ने उन्हें कुंडल भेट किये और एक बड़ी जागीर पुरस्कार में दी। इतना ही बस न समझ कर रावण ने अपनी बहिन की लड़की—खरदूषण की पुत्री—का विवाह भी हनुमान के साथ कर दिया। खरदूषण ने यह सोचकर कि हनुमानकुमार के पिता ने ही मुझे एक बार बन्धन से छुड़ाया था, प्रसन्नता-पूर्वक अपनी पुत्री उन्हें व्याह दी। वास्तव में कौन ऐसा

बुद्धिमान् होगा जो हनुमानकुमार जैसे पराक्रमी शूरवीर को अपनी कन्या न देना चाहे ?

रावण और हनुमान परस्पर एक दूसरे को विजय का यश फिर देने लगे। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन दोनों में अहंकार नहीं था। रावण में जब तक अहंकार का उदय नहीं हुआ था तब तक हनुमान ने उसका साथ दिया। बाद में जब उन्होंने समझा कि रावण अब अहंकार का पुतला बन गया है तो उसका साथ छोड़ दिया उसने अहंकारहीन राम का साथ दिया।

यह बात ध्यान में रखकर अहंकार का त्याग करना ही उचित है। असल में देखा जाय तो अहंकार को जीत लेने पर ही भगवान् की उपासना हो सकती है। निरहंकार ही परमात्मा का शरण-ग्रहण कर सकता है।



# १६

# प्रव्रज्या

——:: ()::: ——

कुछ दिनों बाद रावण से विदा लेकर हनुमानकुमार अपने घर लौटे। पवनकुमार ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया। अजना भी समस्त परिजनों को देखकर प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी—अब दुनियादारी के पचड़ों में ही मुझे नहीं पड़ा रहना चाहिए, किन्तु आत्मा के कल्याण की ओर ध्यान देना चाहिए।

इस गहरे विचार के कारण पिछली रात में उसकी नींद टूट गई। धर्मजागरण करती-करती वह सोचने लगी—पुत्र ने जो विजय प्राप्त की है, उससे क्या मेरी आत्मा की विजय हो सकेगी ? इस समय मुझे जो भी सुखसामग्री प्राप्त हुई है, वह सब पहले की करनी का फल है। लेकिन उस करनी को इस तरह सांसारिक कामों में ही खर्च कर देना उचित नहीं है। उसी करनी की सहायता से आत्मकल्याण करना उचित है। अगर इस समय यह न किया तो फिर कब ऐसा

सुअवसर मिलेगा ?

इस प्रकार विचार कर अजना सती पवनकुमार के पास गई। वह दोनों हाथ जोड़ कर उनके सामने खड़ी हो गई। पवनकुमार ने पूछा—कहो, क्या बात है ? आज इस प्रकार प्रार्थी बनकर आने का क्या प्रयोजन है ?

अजना—आपसे कुछ याचना करने आई हूँ। किसी चीज़ की आवश्यकता न होती तो इस समय प्रार्थना करने आती ही क्यों ?

पवन०—तो कहो, क्या इच्छा है ?

अजना—आपकी आज्ञा हो तो मै धर्मकरनी में लग जाना चाहती हूँ।

पवन०—धर्म करने की मनाई कब है ? खूब किया करो न !

अजना—मेरी इच्छा यह है कि समस्त सांसारिक बंधनों को त्याग कर एक मात्र धर्मक्रिया में ही अपना शेष जीवन व्यतीत करूँ !

पवनकुमार, अंजना का आशय समझ गये। बोले—अंजना, अचानक ऐसा विचार तुम्हारे हृदय में कैसे उत्पन्न हुआ ? पुत्र अभी छोटा है और नई बहुएँ घर में आई हैं। यह तो आनन्द करने का अवसर है। आनन्द के इस अवसर पर तुम्हें विरक्ति का विचार क्यों आ रहा है ? क्या घर में रह कर ही धर्मक्रिया नहीं की जा सकती ?

अजना—संसार में ऐसे-ऐसे प्रलोभन हैं कि उनमें फँस

जाने पर एकाग्र भाव से धर्म की साधना नहीं हो सकती। कदाचित् आपका विचार मुझे संयम ग्रहण करने से रोकने का हो तो मैं रुकने को भी तैयार हूँ, मगर इस शर्त पर कि कि आप मेरी मृत्यु को रोक दें।

पवन०—मृत्यु को रोकने की शक्ति तो किसी में भी नहीं है। कौन जानता है कि कब काल आ जाएगा और कब किसको उठा ले जाएगा? काल स्वच्छंद विहारी है। वह न रोकने से रुकता है और न बुलाने से आता ही है।

अजना—अगर आप काल को नहीं रोक सकते तो फिर मुझे संयम लेने से क्यों रोकते हैं?

मीरां ने भी कहा था—

परणु तो पीतम प्यारो अखड अहवात—
म्हारो रांडवानो भय टालो रे।

इसी प्रकार सती अजना ने कहा—पतिदेव! काल आकर कदाचित् आपको उठा ले जाएगा तो मुझे वैधव्य की वेदना भोगनी पड़ेगी और कदाचित् मुझे उठा ले गया तो आपको विधुरता की व्यथा होगी। ऐसी अवस्था में काल के आने से पहले ही आत्मकल्याण कर लेना योग्य है। काल का भरोसा ही क्या है!

अंजना का न्याययुक्त कथन पवनकुमार को भी ठीक जँचा। उन्होंने अंजना से कहा—थोड़े दिन ठहर जाओ। फिर हम दोनों साथ-साथ संयम स्वीकार करेंगे।

अंजना—आपका कहना ठीक है। परन्तु जिसने मृत्यु को जीत लिया हो, जो मृत्यु के आने पर भाग कर बच सकता हो, जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो या जिसे मृत्यु का भय न हो, वह थोड़े दिन राह देखे तो ठीक भी कहा जा सकता है। पर मै नहीं जानती कि मृत्यु मेरी कब आने वाली है? ऐसी दशा में मै समय का दुरुपयोग कैसे कर सकती हूँ?

पवनकुमार अजना की युक्तियुक्त बात का क्या उत्तर देते? उन्होंने सोचा—जब अजना संयम स्वीकार कर रही है तो मै गृहस्थी में रहकर क्या करूँगा?

पति-पत्नी धर्म कैसा होता है, यह बात इस घटना से भलीभाँति समझ में आ जाती है। अजना सती ने जैसे पत्नी-धर्म का अदर्श उपस्थित किया है, उसी प्रकार पवनकुमार ने पतिधर्म का ज्वलंत उदाहरण सामने रख दिया है।

आज के पति पत्नी-धर्म को भूल रहे हैं। इसी कारण संसार में दाम्पंत्य जीवन दुखपूर्ण दिखाई देता है। आज साधारण तौर पर यह रिवाज चल पड़ा है कि पति एक पत्नी के मर जाने पर दूसरी और दूसरी के मर जाने पर तीसरी व्याह लाना है। मगर यह अन्याय है। पुरुष अपनी स्त्री को तो पतिव्रता देखना चाहते हैं पर स्वयं पत्नीव्रतधारी नहीं बनना चाहते। पुरुषों ने अपनी सुख-सुविधा के अनुकूल नियम घड़ लिए हैं। परन्तु शास्त्रकार स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अनुचित भेद न करते हुए, समान रूप से पुरुष

को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालने का आदेश देते हैं। शास्त्रकार उत्सर्ग मार्ग के रूप में ब्रह्मचर्य पालने का आदेश देते हैं, अगर पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न हो तो पुरुष को पत्नीव्रत और स्त्री को पतिव्रत पालन करने के लिए कहते हैं। लेकिन पुरुष अपने आपको स्वस्त्रीसंतोपव्रत से मुक्त समझते हैं और सिर्फ पत्नी से स्वपतिसंतोषव्रत पालन कराना चाहते हैं। वे यह नहीं सोचते कि जब हम अपने व्रत का पालन नहीं करते तो स्त्री से यह आशा कैसे रख सकते हैं कि वह अपने व्रत का पालन करे ही! अतएव पुरुषों और स्त्रियों के लिए उचित मार्ग यही है कि दोनों अपने-अपने व्रत का पालन करें। जो व्रत का भलीभाँति पालन करता है, उसका कल्याण अवश्य होता है।

अञ्जना सती के साथ पवनकुमार भी संयम स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए। हनुमानकुमार को पता चला कि माता-पिता संयम स्वीकार करने के लिए तैयार हैं तो वह अपनी माता के पास पहुँचे। माता को प्रणाम करके उन्होंने कहा—माताजी! आप मुझ बालक का परित्याग करके कहाँ जा रही हैं? घर में रहकर आप धर्मध्यान कर सकती हैं। यहाँ धर्मध्यान के लिए कौन मनाई करता है?

अजना ने कहा—पुत्र! तुम व्यर्थ मोह में पड़ रहे हो। क्षत्रिय संग्राम से भय नहीं खाते। मै तुझे युद्ध में जाने से रोकती तो मै वीर-माता कहला सकती थी? अगर नहीं, तो

तू मुझे क्यों रोकता है? मैं कर्मशत्रुओं को जीतने के लिए युद्ध में जा रही हूँ। ऐसे मौके पर तू अपने को छोटी उम्र का कहकर मुझे दीक्षा लेने से रोकना चाहता है। यह क्षत्रिय-पुत्र को शोभा नहीं देता। काल निर्दय है और शरीर दुर्बल है। कोई नहीं जानता कि कराल काल का कब आक्रमण हो जायगा। ऐसी दशा में कर्मशत्रुओं को जीतने के लिए जाती हुई अपनी माता को रोकना और वीरपुत्र होकर कायरता दिखलाना उचित नहीं है।

हनुमान धीर-वीर थे। वह समझ गए कि अब माता-पिता की रुचि गृहस्थ हो कर रहने की नहीं है और बिना इच्छा के उन्हें रोक रखना उचित नहीं है। यह सोचकर दीक्षा-महोत्सव करने की तैयारियाँ आरंभ की। पवनकुमार और अंजना ने यथासमय भावपूर्वक संयम अंगीकार किया। हनुमान ने सोचा—अब मुझे माता के दर्शन कब होंगे? यह सोचकर उन्होंने माता के केश अपनी गोद में ले लिए और उन्हें घर ले आये। उनकी धारणा थी कि जब-जब मैं इन केशों को देखूँगा तब-तब मुझे माता का स्मरण हो आएगा और माता के केशों का दर्शन भी होगा।

अंजना और पवनकुमार संयम का बराबर पालन करने लगे। संयम का विधिपूर्वक पालन करके अंजना सती आयु का क्षय होने पर स्वर्ग गई और वहाँ से उनका जीव महा-देह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा।

यहाँ अञ्जना सती की कथा समाप्त होती है। कथा का सार यही है कि जो मोह पर विजय प्राप्त करके धर्म पर दृढ़ श्रद्धा रक्खेगा और धर्म के मार्ग पर चलेगा, वह अवश्य ही शाश्वत कल्याण का भागी होगा।

